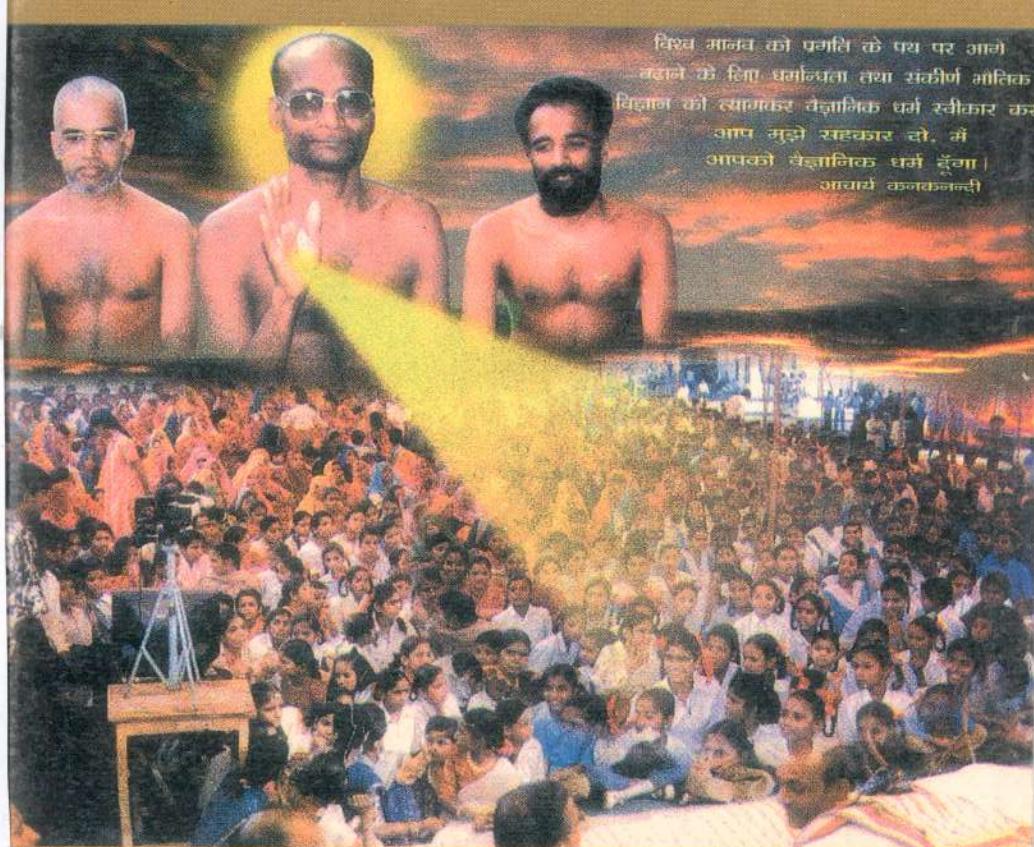


समग्र क्रांति के उपाय



दिल्ली मानव को परामिति के पथ पर आने
वहाँ के दिल्ली धर्मान्वयना तथा संकीर्ण भारिक
विद्वानों को ल्यागाकर वैज्ञानिक धर्म स्वीकार करो
आप मुझे राहकर दो, मैं
आपको वेहानिक धर्म दूँगा।
जगत्परं कनकनन्दी

आ. रत्न श्री कनकनन्दीजीश्री गुरुदेव

समग्र क्रांति के उपाय

आयड़ (उदयपुरमें) शिविर को संबोधित करते हुए धर्मचार्य

श्री कनकनंदी जी गुरुदेव



आचार्य रत्नश्री कनकनंदी जी गुरुदेव

समग्र क्रांति के उपाय

समग्र क्रान्ति के लिए व्यक्ति निर्माण से लेकर विश्वकल्याणार्थ आयड़ (उदयपुर) में आयोजित समर्पित कार्यकर्ता शिविर में दिये गये आचार्य श्री कनकनन्दी के प्रातः कालीन उद्बोधन का संकलन। इस शिविर में दि. एवं श्वे. जैन, प्राचार्य, प्राध्यापक, लेक्चरार, इंजिनीयर आदि ने भाग लिया था।

प्रवचनकार— आचार्य रत्न श्री कनकनंदी जी गुरुदेव
संकलनकर्ता— आ. ऋष्टि श्री
द्रव्यदाता— कांतिलाल शांतीलाल जी जवेरी
 98—जवेरी बाजार, कुबेर बिलिंग, मुंबई—400002
फोन नं.: (022) 6481122
[www.Jainkanaknandhi.org.](http://www.Jainkanaknandhi.org)

E:Mail.Info @ JainKanaknandhi.org.

प्रथम संस्करण — 2001

प्रतियाँ — 1000

मूल्य — ज्ञान प्रचारार्थ सहयोग : 15.00

प्रकाशन एवं प्राप्ति स्थान—

(1) श्री सुशीलचन्द्रजी जैन (प्रज्ञा पुंज)

‘धर्म-दर्शन-विज्ञान शोध संस्थान’ निकट दि. जैन धर्माशाला, बड़ौत (उ.प्र.)

(2) श्रीमती रत्नमाला जैन C/o डॉ. राजमलजी जैन

4-5 आदर्श कॉलोनी पुलाँ, उदयपुर (राज.)फो. नं. (0294) 440793

(3) श्री गुणपालजी जैन— (दानश्री)

बैहड़ा भवन 8/1 कुंदनपुरा मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)फो.नं.:(0131) 450229

(4) श्रीमती लक्ष्मीगुरुचरण जी जैन — (दानश्री) (वकिल बम्बे हाईकोर्ट)

144 मुवी टावर नीयर, मिल्लतनगर लोखण्डवाला कॉम्प्लेक्स,
 अंधेरी (प.) मुंबई-400053

फोन नं. : (022) 6327152, 6312124, 63271152

(5) ‘सेवाश्री’ सुरेखा जैन (शिक्षिका) w/o वीरेन्द्रकुमार डालचन्दजी गड़िया
 कपड़े के व्यापारी – सलुम्बर जि. उदयपुर पिन. 313027

फोन नं. : (02906) 2043

(6) श्री महावीर कुमार जैन

13 अग्रसेन कॉलोनी, दादाबाड़ी कोटा फोन नं. : (0744) 410818

(7) धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान

C/o चन्द्रप्रभु मंदिर, आयड़, छोटूलाल चित्तोड़ा

आयड़ बस स्टोप के पास, उदयपुर-313001(राज.)

फोन न. 413565

लेसर टाईप सेटर्स :

श्री कुन्तुसागर ग्राफिक्स सेन्टर 25, शिरोमणि बंगलोज,

सी.टी.एम. चार रस्ता के पास, अहमदाबाद-380026

फोन - 5850744, 5851771



मूर्तिकार की तरह गढ़ता है, गुरु

आ. ऋद्धि श्री

निम्नता से उच्चता की ओर ले जाने वाले, गुणों का विकास कराने वाले यदि कोई है तो वह है गुरु। गुरु एक ऐसा सौंचा है कि जिस में ढलकर मनुष्य अपने जीवन का सर्वतोमुखी विकास करता है। जहाँ जीवन यापन के लिए धन, भोजन, वस्त्र, मकान, हवा, पानी आदि की आवश्यकता पड़ती है, वहाँ प्रगतिशील बनने के लिए गुरु की महत्वपूर्ण अनिवार्य आवश्यकता पड़ती है।

प्रसिद्ध दार्शनिक इमर्सन ने कहा है “वस्तुतः गुरु एक चतुर किसान है जो मानव जीवन पथ के काँटों, झाड़-झांखाड़ों को उखाड़कर अलग करता है, और सद्गुणों के सुरभित वृक्ष लगा देता है।”

जैन साहित्य में गुरु को ज्ञानाभ्यन रूपी शताका कहा है—

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाभ्यनश्लाकया।

चक्षुरोन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः॥

अर्थात् अज्ञानरूपी अंधकार को जो ज्ञान रूपी शताका से खोल देता है, अर्थात् जो ज्ञान का प्रकाश दिखाता है वही गुरु है। ऐसे गुरु को मेरा कोटि-2 प्रणाम हो। सद्गुरु ईश्वर से भी महान् माने जाते हैं।

“गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूँ पाय,

बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो बताय॥”

ऐसे सद्गुरु किसी को भी रास्ते चलते नहीं मिल जाते। वर्षों की तलाश, हृदय विह्वलता, जन्म-जन्मान्तरों के पापों के क्षय और पुण्य के उदय से ही सद्गुरु की प्राप्ति होती है। शिष्य के जीवन का अद्वितीय सौभाग्य का उदय होता है जब उसे सच्चे गुरु की प्राप्ति होती है क्योंकि जीवन में सद्गुरु की प्राप्ति होना अत्यन्त कठिन है।

जीवन तो हर किसी को मिलता है, और सभी जीवन जीते भी हैं लेकिन जीवन कैसे जिया जाये? इसी के जवाब में न जाने कितने शास्त्र, दार्शनिक ग्रंथ रच डाले गये। महावीर, बुद्ध, शंकराचार्य, ईसामसीह आदि मनीषियों ने समूचे जीवन तप

करके सामयिक समाधान प्रस्तुत किये। इस पहेली को हल करने के लिए तरह-2 की साधना प्रणालियों का निर्माण किया। प्रयासों की इस निरंतरता के बावजूद भी यह पहेली अनबूझ ही रही। कारण रहा शाश्वत जीवन दृष्टि का अभाव। सामयिक समाधानों ने समय के अनुरूप निदान तो प्रस्तुत किये, पर वर्तमान परिवेश, परिस्थितियों में उनकी छवि धूमिल हो गयी।

ऐसे बदलते परिवेश, परिस्थिति में नवीन दृष्टि देने का आह्वान परम पूज्य 'मम सद्गुरुवर्य आ.र.ल श्री कनकनंदी जी गुरुदेव ने पुनः इस भारत वसुन्धरा पर जन्म लेकर किया है।

ज्ञानमूर्ति गुरुदेव का तपोनिष्ठ जीवन ऐसा जीवन है कि, जिन्होंने अस्तित्व की सूक्ष्मताओं और बदलती परिस्थितियों के मर्म को भली भाँति परखा है और ऐसे समाधान प्रस्तुत किये हैं जो सामयिक होते हुए भी शाश्वत हैं, चिर नवीन हैं। सांसारिक परिस्थितियाँ और भौतिक हलचलों, सामाजिक, पारिवारिक, राष्ट्रीय, वैश्वक विधि-व्यवस्थायें मानव जीवन की मूलभूत स्थितियों में भारी परिवर्तन प्रस्तुत करती हैं।

पहले के साधना-सूत्रों पर विचार करें तो यही पाते हैं कि वर्तमान में इनका प्रयोग खंडित जीवन जीने का उपक्रम भर है। वर्तमान समय में जिन्दगी छोटे से दायरे में कसी बँधी होने के कारण विशद दृष्टि रख पाने में असमर्थ है। लेकिन ऐसी बदलती परिस्थितियों में भी पूज्य गुरुदेव ने न केवल अपने जीवन के स्वरूप को ही बदला बल्कि विश्व के समस्त प्राणीमात्र के जीवन का मूल मंत्र ‘सर्वजीव हिताय सर्वजीव सुखाय’ की कथनी को अपनी करनी में चरित्रार्थ करके क्रियान्वित किया है।

गुरुदेव ने अपनी समता, वात्सल्यता, उदारता, अनुकंपा का परिचय एक छोटे शिशु से लेकर वृद्धों तक को दिया है। आप केवल छोटे बच्चों या प्रौढ़ों को ही सुसंस्कारित नहीं करते बल्कि जिन को सरकार भी कार्य से निरस्त कर देती हैं, परिवार जन भी उपेक्षा दृष्टि से देखते हैं ऐसे लोगों को भी गुरुदेव अपनी ममता, उदारता भरी शिक्षा से सुसंस्कारित करते हैं एवं जिंदगी किस तरह जीएँ? जीवन जीने की कला का प्रशिक्षण देते हैं। “धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान” के तत्वावधान

में आचार्य गुरुवर्य ने छः दिवसीय समर्पित कार्यकर्ता प्रशिक्षण शिविर के आयोजन द्वारा विभिन्न धार्मिक उपासनाओं के साथ—२ योग, ध्यान, संस्कृत संभाषण, अनेक ऊलन्त सामाजिक समस्याओं पर गहन विचार विमर्श किया।

वास्तव में सच्चे गुरु की यही पहचान है कि जो केवल स्वयं के जीवन की चिंता ना करके दूसरों के जीवन के हित, कल्याण की चिंता करता है। गुरुदेव का शरीर अस्वस्थ होते हुए भी वे अपने शरीर की चिंता नहीं करते बल्कि ज्ञान—जिज्ञासुओं की जिज्ञासाओं का समाधान लगातार ३—४ घंटे तक करते ही रहते हैं। यह सब गुरुदेव की असीम, अपूर्व, विशाल उदारता, वात्सल्यता, सहदयता, सहिष्णुता, संवेदना, दया, करुणा के परिचायक मणि सोपान हैं।

यह हमारा असीम पुण्य है जो कि हमें ऐसी विषम परिस्थिति में ऐसे सत्गुरु की प्राप्ति हुई एवं उनकी उदारता, वात्सल्य की छाँव मिली। ऐसे गुरु को पाकर मेरा जन्म धन्य हो गया। सफल, सार्थक, श्रेष्ठ हो गया। हम तो एक अनगढ़, बेरुप पथर थे। गुरुदेव की सुशिक्षा सुसंस्कारों की छैनी हथोड़ी से आज हम एक सुंदर मूर्ति का रूप पा चुके हैं। धन्य है उस उदार शिल्पी का दृष्टिकोण जिसने मार्ग में पड़े पथर को भी एक भगवान् का रूप दे दिया।

सार्वजनिक सम्पत्ति जनता जनादर्शन की है। उसका दुरुपयोग महापराध है। उसके प्रयोग का अधिकार कर्तव्य पालन करके प्राप्त करो।

* * *

राष्ट्र की प्रगति की नीति राजनीति है। राष्ट्र की उत्तम सम्भता—संस्कृति जैविक सम्पत्ति तथा भौतिक सम्पत्ति आदि का समुच्चय ही राष्ट्र है। अतः उसकी सुरक्षा समृद्धि की नीति ही राजनीति है न कि सत्ता/सम्पत्ति की लोतुपता।

* * *

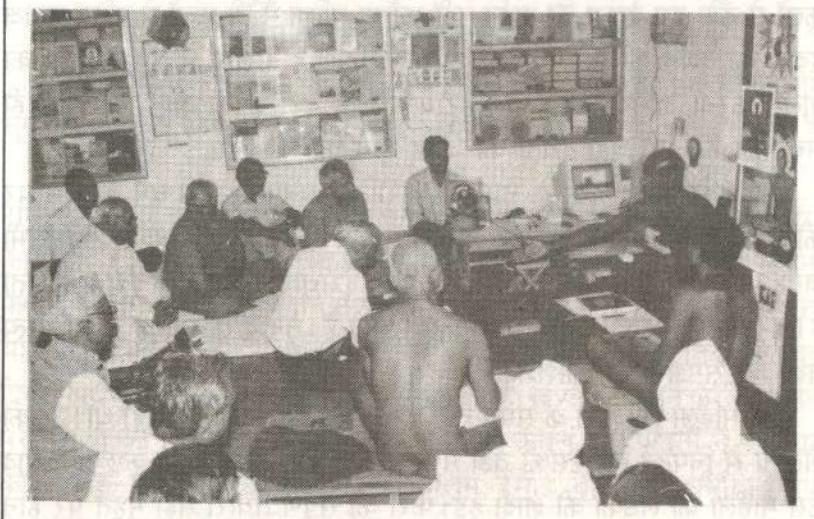
वह नम्रता यथार्थ नम्रता नहीं है जो अन्याय, असत्य के सामने घुटने टेक दे, परन्तु वह नम्रता यथार्थ नम्रता है जो सत्य, न्याय और उसके धारक को हृदय से स्वीकार किया जावे।

— आ. रत्नश्री कनकनंदी जी गुरुदेव

अनुक्रमणिका

विषय

	पृष्ठ सं.
1. सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए जन जागृति चाहिए	1
2. भारत को पुनः विश्व गुरु बनाने में सुसंस्कारित बालक ही कामयाब होंगे	11
3. व्यसन से विनाश तथा निर्वसन से विकास	20
4. स्वयं का अवलोकन तथा स्वकर्तव्य पालन करना ही जीवन जीने की श्रेष्ठ कला है	33
5. महान् पुरुषों का आचरण करने से ही स्वयं का जीवन महान् बनता है।	49
6. शक्ति और मर्यादा का प्रेरक पर्व — विजया दशमी	57
7. अथ वैज्ञानिक जिज्ञासा : आध्यात्मिक समाधान	68



वैज्ञानिक श्री जयंत विष्णु नार्लीकर से ब्रह्माण्ड के बारे में चर्चा करते हुए

वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनंदीजी



सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए जन जागृति चाहिए

धर्मसभा को संबोधित करते हुए आचार्यश्री कनकनंदी जी गुरुदेव ने ‘‘सामाजिक कुरीतियों से हानि एवं उनके संशोधन के उपाय’’ विषय पर प्रकाश डालते हुए एक कहानी के माध्यम से बताया कि एक स्थान पर राजा का स्वागत करने के लिए सम्पूर्ण राजमार्गों को फूलों से आच्छादित किया गया। जब राजा के आने का समय हुआ उसी समय एक कुत्ते ने उस जगह मल विसर्जन कर दिया। मंत्री घबराने लगा कि राजा आने वाला है सफाई करने वाला कोई है नहीं अब क्या किया जाये? उसने बुद्धि लगाई, उस मल को ढेर फूलों से ढ़क कर उस स्थान पर अगरबत्ती, नारियल, दीपक, अष्टक आदि रखकर उसे देवता कह दिया। सभी दर्शनार्थी आते गये और देवता समझकर उस पर फूल, अगरबत्ती देवता मानकर लगाते गये। राजा आया उसने देखा देवता फूलों से आच्छादित है। राजा ने आज्ञा की कि मैं फूलों से ढँके हुए देवता का दर्शन नहीं करूँगा बल्कि मैं तो फूलों से रहित प्रत्यक्ष देवता का दर्शन करूँगा। मंत्री जी का हाल बेहाल होने लगा लेकिन राजाज्ञा का पालन करना अनिवार्य था। फूल हटाये गये तो वहाँ दुर्गन्ध आने लगी जैसे ही सब फूल हठ गये वहाँ देवता की जगह कुत्ते का मल दिखाई दिया।

इसी प्रकार आज धर्म के नाम पर कुरीतियाँ पनप रही हैं। धर्म के नाम पर की गई कुरीतियाँ से भी परिवार, समाज, राष्ट्र, राजनीति, अर्थनीति आदि सभी जगह पापाचार, भ्रष्टाचार, अन्याय, अनीति, दुराचार, शोषण को बढ़ावा मिलता है। हम पीढ़ी दर पीढ़ी कुरीतियों में फँसते जाते हैं। उन कुरीतियों के रहस्य, सत्य तथ्य को समझने की कोशिश नहीं करते।

एक महिला की शादी के समय वहाँ पर बिल्ली बहुत दंगा कर रही थी। उसकी शैतानी से निपटने हेतु उसको वही मण्डप के खंभे से बाँध दिया। कुछ वर्षों बाद उस महिला की लड़की की शादी हुई। फेरों की संपूर्ण तैयारी सही मुहूर्त पर होने वाली थी कि लड़की की माँ कहने लगी अभी फेरे नहीं पड़ेगे जब तक कि बिल्ली न आ जाये। हमारे यहाँ की यह प्रथा है कि जब शादी होती है तब मण्डप वाले खंभे से बिल्ली बाँधी जाती है। मेरी शादी के समय भी मण्डप में बिल्ली बाँधी

गयी थी। इस प्रकार उस रुढ़िवादी महिला ने शादी के शुभ मुहूर्त को निकाल दिया। वास्तव में बिल्ली क्यों बाँधी थी वह इस तथ्य से अनभिज्ञ थी। इसी प्रकार धार्मिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक औचित्य, उद्देश्य क्या है, क्या थे, क्या होने चाहिए इन सभी बातों को नहीं समझते बल्कि भेड़चाल की तरह अनुकरण करते रहते हैं।

भारतीय संस्कृति धर्म प्रधान सभ्यता / संस्कृति है। हर कोई धर्म को स्वीकार करता है, मानता है, विश्वास श्रद्धा रखता है। लेकिन वास्तविक धर्म क्या है? इससे कोई परिचित होना नहीं चाहता। धर्म क्या है? इसे समझें। धर्म विश्व का वह मंगलमय, शाश्वतिक, पवित्र, सार्वभौम, सार्वकालीन, सर्वव्यापी, अकाट्य तत्व है जिससे इस अखिल विश्व का निर्माण, निर्वाह होता है एवं अनादि आवहमान, अनंत दुःखों से संतप्त / व्यथित / क्लेशित उत्पीड़ित जीव अनंत, अक्षय, आत्मोत्थ, चिदानंदमय सुख को प्राप्त करता है।

‘‘वस्तु सहावो धर्मो’’ अर्थात् वस्तु का स्वरूप ही धर्म है।

धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो, धर्मं बुधाश्चिन्वते ।

धर्मणैव समाप्यते शिव सुखं धर्माय तस्मै नमः ॥

अर्थात् धर्म समस्त सुख के स्रोत एवं हितकर है, इससे ही शाश्वतिक मोक्ष सुख की उपलब्धि होती है; इसलिए प्रबुद्ध व्यक्ति धर्म को चुनते हैं, स्वीकार करते हैं।

आगे जाकर धर्म में विकार हो गया, सङ् गया। यह सङ्ग लिए परिवार, समाज, राष्ट्र सभी जगह दुर्गन्ध का वातावरण बना रही है। जिस प्रकार अच्छी-2 सामग्रियों को सङ्गाकर शराब बनाते हैं उसी प्रकार अच्छे रीति रिवाज विकृत बनकर सङ्गान्ध फैलाते हैं। धर्म को विकृत बनाने में पंडितों का बहुत बड़ा हाथ रहा। सत्ता, सम्पत्ति, यश, कीर्ति की लालसा से पंडितों ने धर्म की अच्छाईयों को विकृतियों में बदल दिया। अर्थ का अनर्थ कर दिया। धर्म के सिद्धान्तों का खण्डन-मण्डन करके धार्मिक परम्पराओं को विकृत-कुरीतियों में बदल दिया। केवल जैन पंडितों ने जैन धर्म की ही तोड़-फोड़ नहीं की बल्कि हिन्दू-मुस्लिम, ईसाई, बौद्ध सभी धर्मावलम्बियों ने अपने-2 धर्म में कुरीतियों को जन्म दिया।

बलिप्रथा, सतीप्रथा, दहेज प्रथा, मृत्युभोज, श्राद्ध आदि रीति रिवाज धर्म के नाम पर कलंक हैं। इन कुरीतियों का विनाश इसीलिए नहीं हो पा रहा है क्योंकि

इनको धर्म से जोड़ा गया है। व्यक्ति धर्म के सही तथ्य से परिचित तो होता नहीं और जो रुद्धि, अंधशृद्धा है उसके ऊपर उसका विश्वास पक्का रहता है; अगर इनको तोड़ेंगे तो पाप लगेगा, भगवान् रुष्ट हो जायेंगे ऐसी शृद्धा उनके अंदर रहती है। चेचक रोग होता है लेकिन लोग उसकी चिकित्सा के बजाय देवी मानकर पूजा करते थे, यहाँ तक कि वह रोग सही नहीं होता तो पशुबलि, नरबलि देवी को प्रसन्न करने के लिए चढ़ाते थे। तथाकथित पंडित दान-दक्षिणा के लोभ के कारण अपनी आजीविका हेतु ऐसी मनगढ़न्त कपोल-कल्पित, मिथ्या-परम्पराओं को धर्म से जोड़कर भोली, सीधी जनता को ठगते थे। इन कुरीतियों के बढ़ने से परिवार, समाज, राष्ट्र, धर्म, कानून, राजनीति सभी का विनाश हुआ। ये प्रथायें किस प्रकार प्रारम्भ हुई मैं सभी के संबंध में संक्षिप्त प्रकाश डालूँगा।

सतीप्रथा भारतीय सभ्यता संस्कृति में पली को धर्म पली कहा जाता है। पली को धर्म से जोड़ा गया एवं पति को परमेश्वर की उपमा दी है। अगर पली विधवा हो गयीं तो धर्म नष्ट हो गया उसे सभी हेय दृष्टि से देखते थे। अपमान को सहन न कर पाने की स्थिति में कोई-2 लड़की आत्महत्या कर लेती थी या परिवार के लोग ही उसे भाग्यहीन समझकर उसे अग्नि में जलने के लिए विवश करते थे। कालान्तर में हमारे देश में विदेशी आक्रान्ताओं का, मुगलों का, आक्रमण हुआ। जब पति शत्रु से पराजित हो जाता था या पति की हत्या कर दी जाती थी तो शत्रु से अपने शीलब्रत की रक्षा हेतु स्त्रियाँ अग्नि में कूदकर अपने शीलब्रत की रक्षा करती थीं। आगे चलकर यह प्रथा कुप्रथा में परिवर्तित होती गयी। इस कुप्रथा, कुरीति को रोकने हेतु प्रयास आधुनिक पढ़े लिखे, अमीर राजघराने के राजकुमार राजा राममोहनराय ने किया। उनकी भाभी विधवा हो गयी तो परिवारजनों ने बहुत कष्ट, प्रताङ्नाये देकर अग्नि की बलि चढ़ा दिया। ऐसी नारी की दुर्दशा से दुःखी होकर राजा राममोहनराय ने दृढ़ प्रतिज्ञा की कि मुझे कितने ही कष्ट, आपत्तियाँ, विरोधों का सामना करना पड़े मैं इस कुरीति को मिटाकर रहूँगा। उन्होंने अपनी प्रतिज्ञानुसार काफी विरोधों को, कष्टों को सहन करके इस कुरीति का अंत किया। फिर भी कुछ स्थानों पर आज भी यह कुरीति विद्यमान है।

दूसरी महा भयंकर विनाशकारी कुरीति दहेज प्रथा है। शायद आप सभी सती प्रथा को खराब मानते होंगे लेकिन दहेज प्रथा को बहुत अच्छा मानते होंगे क्योंकि दहेज में तो धन, सम्पत्ति बिना मेहनत किये प्राप्त होती है। पहले के समय में पुत्र

को अपनी शक्ति के अनुसार स्वेच्छा से माँ-बाप कुछ दैनिक जीवनोपयोगी सामान भेट रूप में देते थे। परंतु यह प्रथा आगे चलकर शोषण की प्रथा बन गई। हमें सोचना चाहिए कि यह दहेज लेना कहाँ तक उचित व न्यायपूर्वक कर्तव्य है। प्रथमतः माता-पिता अपनी पुत्री का प्यारसे लालन-पालन करते हैं, शिक्षा देते हैं, संस्कार देकर योग्य बनाते हैं। इसमें 20-25 वर्षों में लाखों रूपया खर्च हो जाता है। ऐसी अमूल्य/बहुमूल्य कन्या को जो प्राप्त करना चाहे उस कन्या के मूल्य को उसके माँ-बाप को देना चाहिए और कृतज्ञ बनना चाहिए। परंतु इससे विपरीत जिस प्रकार डाकू परिश्रम से कमाया गया धन, सुरक्षित रखा हुआ धन बलपूर्वक लूट ले जाता है और परिवर्तन में मालिक को कष्ट तथा मृत्युदण्ड देता है उसी प्रकार वर पक्ष वाले बहुमूल्य कन्या के साथ-2 कन्या पक्ष को लूटते हैं, कन्या से यंत्र के समान काम लेते हैं और भोग सामग्री के समान भोगते हैं। कन्या को विभिन्न शारीरिक, मानसिक, यातनाये देते हैं। यहाँ तक कि आत्महत्या के लिए विवश करते हैं, या हत्या कर देते हैं। यह कितनी क्रूर, बर्बर, अनर्थ, शोषणकारी, रोमहर्षक, हिंसक, अन्याय, पापाचार की वृत्ति है। जिस संस्कृति में प्रत्येक जीव को भगवान् के समान माना गया है, वनस्पति आदि एकेन्द्रिय जीवों की भी रक्षा की शिक्षा दी गई उस संस्कृति में पंचेन्द्रिय और वह भी गृहलक्ष्मी की हत्या / यातना क्या सही है? क्या ऐसी घटनाये 'अहिंसा परमो धर्मः' की जय बोलने वालों के यहाँ नहीं हो रही है? पते, फूल, फल तोड़ने में पाप बोलने वालों के यहाँ, शाकाहारी भोजन करने वालों के यहाँ ऐसी नारकीय, बर्बर, क्रूर घटनायें क्या नहीं हो रही हैं? 'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' की संस्कृतिवाले देश में ऐसी मातृजाति की हत्या क्या नहीं हो रही है? इस दहेज की प्रथा के कारण अनेक बुराईयाँ / समस्याये उत्पन्न होती हैं। जैसे- कन्या को हेय, दृष्टि से देखा जाता है। कन्या जब गर्भ में रहती है, तब उसको परिवार का एक बोझ अभिशाप मानकर उसकी गर्भ में ही निर्मम हत्या कर दी जाती है। जन्म लेने के बाद भी जैसे पुत्र जन्मोत्सव मनाया जाता है, उसीप्रकार कन्याओं का नहीं मनाया जाता। कन्या को उच्च शिक्षा भी कम दी जाती है। कन्या थोड़ी बड़ी होने के बाद यदि उसकी शादी नहीं हुई तो उसको लेकर समाज के लोग निंदा चुगली, आक्षेप करते रहते हैं। शादी के लिए माँ-बाप को अनेकों समस्यायें सहन करनी पड़ती हैं। शादी होने के बाद भी दहेज को लेकर गृह कलह चलता रहता है और कन्या को विभिन्न

प्रकार की शारीरिक-मानसिक यातनायें देते हैं। जिसके कारण अनेक कन्याये विवश होकर स्वयं आत्म हत्यायें कर लेती हैं या वरपक्ष वाले उसकी हत्या विभिन्न उपायों से कर देते हैं। इससे उसके छोटे-2 बच्चे भी अनाथ हो जाते हैं और वही बच्चे आगे जाकर परिवारजनों से घुणा करने लगते हैं एवं कुसंगति में पड़कर आवारा, डाकू, द्रोही व्यसनी बनकर परिवार, समाज, राष्ट्र में अन्याय अत्याचार, पापाचार, भ्रष्टाचार अनर्गल प्रवृत्तियों को बढ़ावा देते हैं। ऐसी कूर, अमानवीय, विषमतापूर्ण समस्याओं का समाधान दहेज पर रोक लगने से ही होना संभव है। तुम पुरुष हो। पुरुष स्वयं को स्त्री से श्रेष्ठ, ज्येष्ठ, वरिष्ठ, पुरुषार्थी मानता है। इसीलिए स्वयं को वर (दामाद, जमाई, कुंवरसा) कहलाता हैं एवं पत्नी को कन्या (कनिष्ठ, अबला) मानता है। परन्तु व्यवाहर इसके विपरीत करता है। श्रेष्ठ / ज्येष्ठ / पुरुषार्थी व्यक्ति कभी भी दुर्बल, कनिष्ठ व्यक्ति से याचना नहीं करता है, भीख नहीं माँगता है। लेकिन वरपक्ष वाले कन्या पक्ष से भीख माँगते हैं, याचना करते हैं। वास्तव में ये चोर, डाकू, भिखारी, मरे हुए के समान हैं। क्योंकि

‘मांगन मरण समान है, मत मांगो कोई भीख,
मांगन से मरना भला, ये सत गुरुकी सीख।
बिन माँगे सो दूध बराबर, माँगे मिले सो पानी,
कबीर वह है खून बराबर, जामे खींचातानी।’

इस दहेज प्रथा का इतना विरोध हो रहा है लेकिन निरंतर दहेज में वृद्धि हो रही है। इसीलिए आज स्त्री-पुरुष के अनुपात में असन्तुलन हो रहा है। अनेकों समस्याओं से परिवार, समाज राष्ट्र पीड़ित, दुःखी, परेशान हैं।

तीसरी कुरीति बाल विवाह है। यह कुरीति अभी भी सबसे अधिक राजस्थान में है। यहाँ पर गोदी के बच्चों की शादी हो जाती है। छोटी उम्र में शादी होने पर लड़के-लड़की की शारीरिक, मानसिक, नैतिक, बौद्धिक शक्ति का विनाश तो होता ही है, उसकी जो भी संतान होती है वह भी बीमार, बुद्धिहीन, तेज, बल, शौर्य से रहित होती है। इस प्रथा का प्रचलन इस प्रकार हुआ— जब भारत में मुसलमान आये तब वे हिंदू स्त्रियों के साथ बलात्कार, लूट करके उनसे शादी करना आदि अत्याचार करते थे। क्योंकि हिन्दू कन्यायें बहुत ही सुंदर होती हैं। इसीलिए उनकी शादी जल्दी कर देते थे। लेकिन वह कुरीति आज भी विशेष रूप से राजस्थान

में मौजूद है। आप सभी ओरंगजेब को खराब मानते हो लेकिन मैं सबसे ज्यादा मुस्लिम बादशाहों में अकबर को खराब मानता हूँ। उसने ‘दीन-ए-इलाही’ धर्म के नाम पर और मीना बाजार बनाकर स्त्रियों के साथ बलात्कार किया था। ऐसे अकबर को महान् अकबर इतिहास में लिखा है लेकिन राणा प्रताप के सामने महान् नहीं लिखेंगे क्या वास्तव में अकबर महान था? यही हम भारतीयों की मूल में भूल है।

परदा प्रथा— मैं परदा का विरोधी नहीं हूँ लेकिन परदे के वास्तविक रूप को समझें। शील सदाचार का पालन मत करो और धूंधट लगा लो क्या यह परदा का रिवाज ठीक है? स्त्रियों को शालीनता, मर्यादा, लज्जा में रहना ही उचित है लेकिन इस प्रकार भी ठीक नहीं कि नग्न होकर प्रदर्शन करे। मर्यादा के अनुसार आचरण करना ही उचित है। यह प्रथा भी मुसलमानों के आक्रमण के समय अपने शील सदाचार की रक्षा हेतु प्रचलित हुई। वैसे अन्य प्रदेशों में यह प्रथा नहीं है। राजस्थान में कुछ भागों में है।

फैशन— शरीर को स्वस्थ, सबल रखने के लिए पानी, वस्त्र, औषधि, प्रसाधन सामग्रियों की आवश्यकता होती है। स्वस्थ शरीर में धर्म सदाचार, कर्तव्य पालन सेवा, परोपकारादि कार्य सुचारू रूप से होते हैं। इससे स्वपर, इहलोक-परलोक, समाज, विश्व का कल्याण होता है। परन्तु व्यक्ति इन सभी साधनों के कारण दूसरों को कष्ट देने के साथ-2 भोजनादि से प्राप्त शक्ति से भी दूसरों को कष्ट देता है, माँस अंडा, मछली के लिए दूसरें जीवों की हत्या करता है। मद्यादि नशीली वस्तुओं का सेवन करके शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक तथा स्व-पर को कष्ट देता है। बीड़ी सिगरेट, पान पराग, तम्बाकू, चाय, कॉफी आदि को शौक / आनंद / स्फूर्ति के लिए सेवन करके शारीरिक / मानसिक / सामाजिक आर्थिक सभी दृष्टियों से रुग्ण जर्जरित होता है। शरीर को सर्दी, गर्मी आदि से बचाने के लिए तथा लज्जा निवारण के लिए वस्त्र धारण किया जाता है। परन्तु फैशनरूपी मानसिक रोग से ग्रसित स्त्री-पुरुष बहुमूल्य वस्त्र, परिधान पहनते हुए भी अर्धनग्न, अश्लील, असभ्य होते हैं। भारत ग्रीष्म प्रधान देश होने के कारण यहाँ के खान-पान, परिधान शीतप्रधान देशों से स्वाभाविक रूप से भिन्न हैं। किन्तु स्वयं को सभ्य, आधुकि शिक्षित मानने वाले, जताने वाले कुछ व्यक्ति भयंकर गर्मी में भी काला कोट, पेंट-टाई जूते पहनकर, कूलर, ए.सी. मे बैठकर गरम-2 चाय-

कॉफी पियेंगे। बीड़ी, सिगरेट पीयेंगे, साथ साथ कोकाकोला, लिम्का भी पीयेंगे। तेल, हल्दी मेंहंदी आदि प्रसाधन सामग्रियाँ अहिंसात्मक उपायों से प्राप्त कीये जाती हैं। इसके सेवन से शरीर स्वस्थ, सुंदर बनता है। परन्तु अनेक साबुन, शैम्पू, सेंट, नैलपालिश, लिपिस्टिक, स्नो पाउडर अनेक जीवों को मारकर बनाये जाते हैं और विभिन्न रोग कारक भी होते हैं तथापि उसका सेवन अपने को बड़ा दिखाने की दौड़ में आकर करते हैं कि हम इन वस्तुओं का प्रयोग करते हैं तो धनवान्, अप टू डेट हैं। जो इनका प्रयोग नहीं करते उनको निर्धन, असभ्य, अशिक्षित मानते हैं। इस फैशन को करने में स्त्री-पुरुष अपना कितना श्रम, समय, धन व्यय करते हैं। अगर उनको धार्मिक कार्यों के लिए या सामाजिक कार्यों के लिए कहा जाये तो समय, धन, श्रम कुछ भी नहीं लगायेगे बल्कि बहाना बनाकर दूर हट जायेगे। इसीलिए अनुभव करना जो अधिक फैशन करता है वह शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक, आध्यात्मिक सभी दृष्टि कोणों से हीन होगा। क्योंकि एक म्यान में दो तलवार नहीं आ सकती। जब फैशन करने में समय, श्रम, धन लगायेंगे तो दान, सेवा, परोपकार, नये-2 आविष्कार, खोज करने में कैसे समय, ज्ञान, धन, श्रम लग पायेगा? जितने भी नट-नटी है उनमें बुद्धि अधिक नहीं है। इसीलिए फैशन को मैं सबसे बड़ी खतरनाक कुरीति मानता हूँ।

अगली कुरीति मृत्यु भोज। यह भी सबसे बड़ी भयंकर कुरीति है। यह कुरीति राजस्थान में अधिक है। इस प्रथा का प्रचलन किस प्रकार हुआ? संभवतः पहले किसीके मरने पर उसके दाह संस्कार के लिए सान्त्वना देने के लिए जो अतिथि आदि दूर से आते थे उनकी भोजनादि की व्यवस्था सामूहिक रूप से होती होगी। परंतु धीरे-2 इस व्यवस्था ने विकराल रूप धारण कर लिया। मृत्यु संस्कार के नाम पर अनेक बार भोजन, वस्त्र, बर्तन, दान-दक्षिणा धनादि देना प्रारम्भ हो गया। असमर्थ गरीब व्यक्ति को भी अपनी सामर्थ्य-शक्ति से अधिक खर्च करना पड़ता है। भले उसे घर, जमीन, अलंकारादि भी क्यों न बेचना पड़े? जीवनभर गरीबी की यातना क्यों न सहन करनी पड़े लेकिन सामाजिक दबाव के कारण करना ही पड़ेगा। समाज के लोग प्रीतिभोज देने के लिए बाध्य करते हैं। नहीं देने पर निंदा आदि करते हैं। यह सब अत्यन्त कूर, निष्ठुर, दयाहीन, हिंसक, शोषणकारी, अपमानकर अमानवीय कार्य है। क्योंकि एक तो परिवार से मरने के कारण परिवार के लोग दुःखी रहते हैं अतः उनको सान्त्वना देनी चाहिए, सहायता

करनी चाहिए, भोजन की व्यवस्था करनी चाहिए, परंतु इससे पूर्ण विपरीत कार्य होता है। मरने वाला तो मरा परंतु जीवित वालों को भी जीवित दफना देते हैं। विवाह, पर्व, जन्मोत्सव, धार्मिक अनुष्ठान आदि कार्यों में प्रसन्नता के कारण प्रीति भोज दिया जाता है परंतु मृत्यु जैसे मातम में कैसे भोज किया जावे? यह मानव गिर्द पक्षी से भी निकृष्ट नीच हो गया। क्योंकि गिर्द पक्षी तो सफाई कर्मचारी से भी बढ़कर है, प्रदूषण रोकता है, गंदगी दूर करता है केवल मरे हुए शव को ही खाता है लेकिन मनुष्य तो जीवित-मरण दोनों को ही खा रहा है। कितनी अंधश्रद्धा भारतीयों के अंदर है कि जीवित को तो पूछेंगे नहीं मरने के बाद श्राद्ध करते हैं। श्राद्ध का सही अर्थ तो श्रद्धा है। आत्मा अजर अमर होकर अच्छी गति को प्राप्त करे ऐसी शुद्ध भावना की जाती थी लेकिन आगे चलकर पंडित पुरोहितों ने इसका रूप बिगाड़ दिया। एक बिल्ली दूध पी रही थी बिल्ली को दूध पीता देखकर घर की महिलाने उठाकर चमचा दे मारा बिल्ली बहाने बनाकर वही आँख बंद करके पड़ गयी। महिला ने सोचा आज तो मुझसे बड़ा पाप हो गया। अब क्या करूँ? वह पंडितजी से प्रायश्चित्त लेने पहुँची। पंडितजी कहने लगे— यह तो तुमने बहुत बड़ा पाप किया। इस पाप की निवृत्ति के लिए तुमको एक बड़ा प्रीतिभोज, दानदक्षिणा करना होगा। पंडित ने बड़ी-लम्बी-चौड़ी लिस्ट बनाकर दे दी इतने में बिल्ली उठकर भाग गई। इस प्रकार पंडितों ने इस कुरीति को बढ़ावा देने में अधिक भूमिका निभायी। वास्तविक रूप से सोचा जाये तो क्या मृतात्मा आपके प्रीतिभोज देने से अच्छी सद्गति को प्राप्त हो जाते हैं?

एक बार कुछ पंडित अपने मरे हुए पूर्वजों को जल भोजन तर्पण कर रहे थे। घूमते-2 गुरुनानक देव वहाँ पहुँचे उन्होंने ये सब देखा और वह भी एक पतली छोटी नाली बनाकर गंगा का पानी उस नाली में लाने का प्रयास करने लगे। पंडितों ने उनसे पूछा— आप यह क्या कर रहे हैं? इतनी बड़ी गंगा है फिर भी आप एक पतली छोटी नाली में पानी कहाँ भेज रहे हैं। गुरुनानक बोले यहाँ से 25-30 की.मी. दूर मेरा बगीचा है उस बगीचे के वृक्ष पानी के अभाव से सूख रहे हैं इसीलिए यहाँ से पानी ले जाने का प्रयास कर रहा हूँ। पंडित लोग हँसी करते हुए गुरुनानक को बुद्धिहीन बताते हुए कहने लगे कि जब यहाँ से इतनी दूर बगीचा है तो क्या यह पतली छोटी सी नाली के द्वारा वहाँ तक पानी कैसे पहुँच सकता है? गुरुनानक ने उन पंडितों को समझाते हुए कहा— जब मेरा पानी बगीचे तक

नहीं पहुँच सकता तो क्या आपका भोजन-पानी मृतात्मा पूर्वजों के पास यहाँ से स्वर्ग कैसे पहुँच सकता है?

प्रीतिभोज, शादी, विवाह, पंच कल्याणक, विधान उत्सवादि में अतिथि सत्कार के लिए, परस्पर में प्रेम बढ़ाने के लिए, सुव्यवस्था, प्रभावना के लिए प्रीतिभोज, जीमण की परंपरा है। सब लोग जूते चप्पल दूर रखकर, हाथ-पैर-मुँह धोकर स्वच्छ पवित्र स्थान में पंक्तिबद्ध रूप में बैठकर शुद्ध पवित्र भोजन करते हैं। भोजन के उपरांत झूठे पात्रादि उठाकर एक स्थान पर रखते हैं एवं हाथ-मुँह धोकर शुद्धि करते हैं। झूठन छोड़कर भोजन को बर्बाद नहीं किया जाता क्योंकि झूठन छोड़ना लक्ष्मी / अन्न का अपमान है। साधु हाथ में इसीलिए आहार लेते हैं कि अगर अंतराय आ जाये या किसी कारणवशात् भोजन निकालना हो तो पूरी थाली का भोजन व्यर्थ ना जाये बल्कि हाथ का थोड़ा सा ग्रास ही बेकार जाये। झूठन छोड़ने से प्रदूषण बढ़ता है, गंदगी, बदबू बढ़ती हैं, धन का विनाश होता है, अन्न का अपमान होता है आदि हानियों होती हैं। परन्तु प्रायोगिक रूप से देखने में आता है अधिकांश व्यक्ति खाते कम है झूठन अधिक छोड़ते हैं। भोजन बचा हुआ सङ्कट रहेगा लेकिन गरीबों को नहीं देते। झूठन पात्र भी यथास्थान नहीं रखते। वर्तमान समय में प्रीतिभोज में भी विकृति आ गयी है। अशुद्ध व्यक्ति द्वारा, अशुद्ध पन्द्रहि से बना हुआ, अशुद्ध भोजन जूते चप्पल पहनकर अशुद्ध स्थान में यत्र-तत्र खड़े होकर, शोर शराब करते हुए भोजन करते हैं। कुछ स्थानों पर मद्य, मांस, बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू आदि मादक वस्तुओं का भी प्रयोग किया जाता है। यह कैसा प्रीति भोज है। हमको ये सब बाते छोटी-2 लगती हैं लेकिन ये बाते छोटी नहीं बल्कि बड़ी बातों से भी खतरनाक, विनाशकारी हैं। छोटे-2 जीव मच्छर, खटमल, बैकटीरिया, मृत्यु, बीमारियाँ अधिक करते हैं जबकि बड़े-2 शेर चीता एक-दो का ही मरण कर पाते हैं। इसीलिए हम सभी इन छोटी-2 कुरीतियों का गहराई के साथ सोच विचार करके चिंतन मनन करें। क्योंकि मानव समस्त जीव जगत् में सर्वश्रेष्ठ इसीलिए है कि उसके पास सर्वश्रेष्ठ समर्थ पवित्र मन-वचन-काय की उपलब्धि है। मनुष्य के पास सबसे बड़ा 1400 ग्राम का 10 खरब कोशिकाओं से बना हुआ 2.1/2 पौंड का मस्तिष्क है। इसीलिए मनुष्य की बुद्धि लब्धि/विचार शक्ति सबसे अधिक है। मननशील होने के कारण ही इसे मनुष्य कहते हैं। मनुष्य की रीढ़ सीधी है तथा वह सीधा दोनों पैरों के माध्यम से चल सकता है और

सबसे विशिष्ट, क्रियाशील हाथ इसके पास ही हैं। इन गुणों के कारण उसे विश्व का सर्वश्रेष्ठ प्राणी माना जाता है। वह इसका सदुपयोग करके स्व-पर कल्याण कर सकता है तो इसका दुरुपयोग करके स्व-पर का विनाश भी कर सकता है। इसीलिए मनुष्य को सतत् सतर्क, विवेकशील होकर हर कार्य की प्रवृत्ति करनी चाहिए। इतना विवेक, ज्ञान होने के बावजूद भी यह मानव इन अंधी मिथ्या सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक, कुरीतियों को अपना रहा है। हम धर्म मुक्त होने के लिए करते हैं और वास्तव में धर्म का सही स्वरूप वही है जो हमे सभी बंधनों से मुक्ति दिलाये। ऐसे बंधनमुक्त धर्म से क्या हम मुक्त हो पा रहे हैं या बंधनयुक्त हो रहे हैं? यह हमने नहीं सोचा। क्यों नहीं सोचा? क्योंकि हमें धर्म के प्रति, पूर्वजों के प्रति आस्था विश्वास है कि जो धर्म में लिखा या हमारे पूर्वजों ने किया वह ठीक है, सत्य है वही हमें करना है। उसमें कहाँ तक क्या-2 सत्य / सही है हम अपना तर्क विवेक, ज्ञान नहीं लगाते इसीलिए पक्षपातादि से अनावृत सत्य का दर्शन नहीं कर पाते। जिस प्रकार भगवान् की मूर्ति बहुमूल्य स्वर्णपात्र से ढंकी है जिससे मूर्ति का दर्शन नहीं होता उसी प्रकार रूढि, अविवेक, मिथ्यात्व के कारण सत्य का अनावरण नहीं हो पाता। भगवान् की मूर्ति के दर्शन का इच्छुक जिस प्रकार सुवर्णपात्र को हटाकर मूर्ति का दर्शन करता है उसी प्रकार सत्यग्राही को सत्य के ऊपर पड़े हुए समस्त आवरण को हटाने के लिए सतत् प्रयत्नशील विवेकवान्, क्षीरनीरवत् होना पड़ता है।

आज के प्रवचन को सुनकर समर्पित कार्यकर्ता शिविरार्थीगण एवं अन्य धर्म वत्सल्य श्रोतागण यह संकल्प एवं शिक्षा लें कि इन कुरीतियों को तोड़ने में हम सभी अपना तन-मन-धन-समय सब कुछ समर्पित करेंगे एवं विज्ञ, बाधायें, आपत्ति विपत्तियों का सामना भी करेंगे उनसे घबराकर पीछे नहीं मुड़ेंगे। यह निश्चित है अच्छे कार्य करने में विज्ञ बाधायें आती हैं। लोग निंदा भी करते हैं। जितने भी महापुरुषों ने अच्छे कार्य करने का बीड़ा उठाया उन्हे केवल निंदा ही नहीं सुनने का मिली बल्कि ईंट-पथर, गोबर, आदि की कठिन यातनायें भी सदन करनी पड़ी। लेकिन वे इन परिस्थितियों से विचलित नहीं हुए और अपने कार्य को करते रहें अंत में लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हुए।

भर्तृहरि शतक में कहा है कि सफल श्रेष्ठ मनुष्य वही है जो विज्ञ बाधा आने पर भी विचलित ना हो और अपने कार्य को उत्साहपूर्वक करता जाये। जो विज्ञ

बाधाओं से विचलित होकर अपने लक्ष्य को छोड़ देते हैं वह तो मध्यम पुरुष है। लेकिन जो विज्ञ बाधाओं का नाम सुनकर ही घबराते हैं कार्य प्रारम्भ ही नहीं करते ऐसे मानव तो निम्न श्रेणी के नपुंसक, कायर होते हैं।

इसलिए आज आप सभी का मैं आह्वान करता हूँ कि भारत की सड़ी गली, रुढ़ि, मिथ्या, कुरीतियों को कठिन पुरुषार्थ के बल पर विनाश करो एवं भारत में विकास के कार्यों की नयी चेतना जन-जन में जागृत करके एक अपूर्व चेतनात्मक क्रांति का सूत्रपात्र प्रारम्भ करो।



भारत को पुनः विश्वगुरु बनाने में सुसंस्कारित बालक ही कामयाब होंगे

भारत विकास परिषद के तहत आचार्यरत्न श्री कनकनंदीजी गुरुदेव ने बच्चों को सुसंस्कारित करते हुए कहा कि हम सभी को गौरव होना चाहिए कि हमने भारत जैसे देश में जन्म लिया। इस देश में दूध-धी की नदियाँ बहती थीं इस देश की गौरव गाथायें स्वर्ग के देव गाया करते थे।

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यारत्नुते भारत भूमिभागे।

स्वर्गापिर्गार्थ्यदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ॥

देवगण भी गान करते हैं कि भारत भूमि में जन्म लेनेवाले लोग धन्य हैं। स्वर्ग और अपवर्ग कल्प इस देश में देवता भी देवत्व को छोड़कर मनुष्य योनि में जन्म लेना चाहते हैं।

इस देश की तुलना स्वर्ग की विभूति से भी नहीं की जा सकती थी। भारत देश के बच्चों ने विदेशों में भी जाकर धर्म का प्रचार-प्रसार किया था। अशोक का पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा ने विदेशों में जाकर भारतीय सभ्यता-संस्कृति-धर्म का प्रचार-प्रसार किया और आज उसी भारत देश की क्या दुर्दशा हो रही है? यहाँ खून माँस की नदियाँ बह रही हैं। घर-घर में भाई-भाई, पिता-पुत्र, सास-बहु, पति-पत्नी, बहिन-भाई की प्रशंसा / उन्नति / प्रगति को सहन नहीं कर पा रहे हैं। अश्लील साहित्य - फिल्मों में नग्न चित्र, अंग प्रदर्शन दिखाया जाता है और ऐसी नटी-अभिनेत्रियों का स्वागत प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति के द्वारा

किया जाता है। शरीर के सौन्दर्य प्रसाधन हेतु निरीह मासूम पशुओं की निर्मम हत्यायें प्रतिदिन हो रही हैं। हर दृष्टि से हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार, अत्याचार, अन्याय, अनीति, शोषण, बेइमानी, छलकपट पापाचार, स्वार्थता का बोलबाला है। आखिर इतने महान् देश में इतनी विकृतियाँ कैसे आ गयीं?

अतीत के कदमों की आहट जिस-जिस ने सुनी उन सभी का यही कहना है कि विश्वगुरु भारत की समूची मानव सभ्यता - संस्कृति, व्यवस्थायें, परम्परायें, गतिचक्र के परिवर्तन के दौर में चरमराकर ढहती हुई दिखाई दे रही हैं। आज सब कुछ बदला-2 नजर आ रहा है। पुराना कुछ भी पहिचान में नहीं आ रहा है। विचार हो या परम्परायें, सभ्यता हो या संस्कृति, राजनीति हो या अर्थनीति, धर्मनीति हो या समाजनीति सभी में विघटन बदलाव की प्रक्रिया नजर आ रही है। क्यों हुआ? कैसे हुआ यह बदलाव, परिवर्तन? शायद यह सब कुछ सोचने, समझने, करने के लिए न तो हमारे पास साहस है, न हिम्मत और न ही समय।

हम अपने पूर्वज महान् पुरुषों के महानतम कार्यों की एक झलक देखें और आज के बदलते परिवेश की एक झलक देखें और अतीत वर्तमान की तुलना करें तो बहुत बड़ा आश्चर्य विस्मय होता है कि क्या यह वही विश्वगुरु भारत है कि जहाँ महावीर ने जीव दया का सिद्धान्त प्रतिपादित किया था? अहिंसा को परम धर्मके रूप प्रतिष्ठित किया था? वह देश जिसमें गौतम बुद्ध का 'महाकरुणा का सिद्धान्त' जन्मा और पल्लवित-पुष्पित हुआ था? क्या यह वही भारत है जहाँ याज्ञवल्क्य, चाणक्य, दधीचि आदि महर्षियों ने ज्ञान के अभूतपूर्व अलौकिक आयाम खोले थे? क्या यह वही महादेश सोने की चिड़िया वाला राष्ट्र है जहाँ गणित-विज्ञान के अनेकों नवीन सिद्धान्तों के साथ-2 आयुर्वेद, ज्योतिष, खगोल, भूगोल, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, विकित्सा शास्त्र, धर्मनीति, अर्थनीति, समाज नीति, न्याय, कानून आदि अलौकिक विधाये जन्मी थीं? जहाँ की राजनीति में महात्मा गांधी ने सत्य, शुचिता, अहिंसा के बीज बोये थे। इसी देश की धरती में सुभाषचंद्र बोस, भगतसिंह, वीर सावरकर, चंद्रशेखर आजाद, रानी लक्ष्मीबाई, महाराणा प्रताप जैसे वीरों में खून से बलिदानों की अमर गाथायें लिखी थीं। जहाँ सीता, सावित्री, द्रौपदी, अनुसूया, गार्गी, अरुन्धती अपाला आदि सती नारियों को शील-शक्ति के रूप में मानकर जिनकी पूजा को सामाजिक आधार मानकर दैवीरूप में पूजा जाता था। वास्तव में क्या यह वही भारत वसुन्धरा है?

आज इस भारत भूमि पर हिंसा मनोरंजन बन गई। हिंसा के बढ़ते ज्वार ने जीव दया और करुणा के प्रकाश स्तम्भ को ध्वस्त कर दिया है। पशुधन ने मानव को सुख-सेवा, सुविधा, सुरक्षा दी आज वही मानव उनके प्रति इतना कृतघ्नी हो गया कि बिना सोचे समझे क्रूरता, निर्दयता, स्वार्थता के आवेश में निःसहाय, मूक निरीह पशुओं को कल्पखाने में भेजकर उनकी निर्मम हत्यायें कर रहा है। उनके शरीर के अवयवों से अपने शरीर के अवयवों की सुंदरता बढ़ा रहा है।

सौन्दर्यकरण, शृंगार प्रसाधन शरीर के लिए नहीं होता बल्कि तपस्या के द्वारा शरीर का सौन्दर्यकरण शृंगार प्रसाधन होता है। गिरि कन्दराओं में रहकर निर्ग्रथ दिगम्बर ऋषि-मनीषियों ने तप-त्याग-तपस्या के माध्यम से इस शरीर को शृंगारित करके निर्जन - वीहड़ वन पर्वतों को भी महकाया था। जैसे कि मंद-सुगंध वायु चलना, जाति-विरोधी जीवों में भी आपसी मित्रता-एकता का भाव होना आदि-आदि बातें प्राकृतिक सौन्दर्य की सीमा के अंतर्गत ही आर्विभूत हैं। लेकिन आज के मानव को यह प्राकृतिक सौन्दर्य सहन नहीं होता। अपने फैशन शौक मौजों की पूर्ति हेतु 10-20 हजार की संख्या में नहीं बल्कि करोड़ों की संख्या में पशुओं की बलि चढ़ा रहा है।

सृष्टि की सुंदर रचना को तहस-नहस करके वीभत्स धिनौना रूप तैयार कर दिया है। मानव ने इस सुंदर रत्नगर्भा वसुन्धरा को क्रूरता और बेरहमी के साथ उजाड़ कर वीरान बना दिया है लेकिन वह दिन दूर नहीं जब प्रकृति स्वयं प्रतिशोध करेगी। जब तुम्हारी रक्षा हेतु 33 करोड़ देवता, 24 तीर्थकर, पीर-पैगम्बर कोई भी नहीं आयेगा क्योंकि यह कर्म सिद्धान्त अटल-अकाट्य है। जैसा करोगे वैसा ही फल की प्राप्ति होगी। As you think so you become. इसके प्रत्यक्ष नतीजे हमारे सामने प्रगट हो रहे हैं। दुनियाँ में जगह-2 भूकंप, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अकाल भुखमरी फैल रही है। मानव अशांत, दुःख, क्लान्त, वेदनाओं के दल-दल में जीवन जी रहा है।

ब्रह्माण्ड ने कभी भी क्रूरता, हिंसा, बर्बरता को बर्दाशत नहीं किया है, उसने सदैव ही इसके लिए असहमति के हस्ताक्षर किये हैं।

भारतीय सभ्यता-संस्कृति की सभी परम्परायें - मान्यतायें सड़ गल कर नष्ट हो रही हैं। सभी आदर्शवादी सम्यक् मान्यतायें ऐसी विकृत-दुष्कृत मान्यताओं पर आँसू बहा रही हैं। उनके करुण रुदन का स्पष्ट स्वर सुनायी दे रहा है।

इन सभी ज्वाला मुखी ऊलन्त महाप्रश्नों के पीछे हमारी स्वच्छन्द प्रवृत्ति, हमारी आत्म उपेक्षा, आत्महीनता है। हम स्वतन्त्रता के नाम पर स्वच्छन्दता की तरफ बढ़ रहे हैं। स्वतन्त्रता के उत्साह के साथ-साथ हम नैतिक मूल्यों को भूलकर अनैतिक मूल्यों को अपनाने लगे हैं। हमने स्वतन्त्रता की सार्थकता नहीं समझी इसीलिए स्वतन्त्रता की स्वर्ण जयन्ती की आभा कलंकित व धूमिल हो रही है। मन अशांत, परिवार विखण्डित, समाज विक्षुब्ध, विज्ञान घातक, राजनीति भ्रष्ट, देश आतंकित, धर्म बाह्य ढोंग ढकोसला से व्याप्त, शिक्षा अनुपयुक्त, किसी भी दिशा में दृष्टिपात करें सर्वत्र उलझन ही उलझन चिंता, परेशानी, दुःख, क्लेश, पीड़ा ही पीड़ा नजर आ रही है। लगता है सुख, शांति, समृद्धता के सम्पूर्ण आधार नष्ट हो गये हैं। इन सभी विडम्बनाओं का एक ही कारण है हम संयम, सत्य के पथ से भटक गये और असंयम में पड़कर भोगविलासी, तृष्णावान् बन गये।

नीति, धर्म, सदाचार, परोपकार, संवेदना, सहिष्णुता, दया, क्षमा, करुणा, प्रेम, वात्सल्य, अहिंसा, सत्य, तप, त्याग, व्रत, नियम, संयम-शील के बाँध तोड़ते गये। ईश्वर में विश्वास, कर्मफल सिद्धान्त आदि बातों को मिथ्या असत्य बताने लगे, राजनीति को कूटनीति में बदल दिया, जिन आदर्श, श्रेष्ठ सार्थक परम्पराओं का जीवन में समावेश होना चाहिए वे सभी आदर्श परम्परायें बोझ के समान उतारकर फैंक दी। भाषा, प्रांत, समाज, धर्म, रीति-रिवाज संप्रदाय आदि को लेकर संकीर्णता, स्वार्थता की दीवारें खड़ी कर लीं। अब इन दीवारों को कौन बलशाली भीम बनकर तोड़ेगा? इन सभी संकीर्ण, मिथ्या, असम्यक्, रुढ़िगत, सड़ी गली परम्पराओं को तोड़ने के लिए मुझ कनकनंदी ने जन्म लिया है। आज सभी छोटे-2 बच्चों को मैं इसीलिए सुशिक्षित, सुसंस्कारित कर रहा हूँ कि आप बड़े होकर इन सभी गंदी सड़ी गली परम्पराओं का जड़मूल से विनाश कर दो। आप सभी छोटे बच्चे ही भविष्य के सिपाही हो। मेरा आप सभी के लिए आह्वान नारा है— You give me co-operation, I shall give you scientific religion आप मुझे सहकार दो, मैं आपको वैज्ञानिक धर्म दूँगा। मुझे बाल्यावस्था से अत्यधिक भारतवासियों की दुर्दशा, अकर्मण्यता, नैतिक आदर्शों का अभाव इन सभी बातों की गहरी ठोस/पीड़ा है। दीन-गरीब-अनाथों को जब देखता हूँ उनका धनीक वर्ग किस प्रकार शोषण, अन्याय, अत्याचार करते हैं तब मेरा अन्तरंग पीड़ा व दुःख से पिघल जाता है। मेरी आँखों में आँसू आ जाते हैं। वास्तव में कितनी महान-

2 आदर्श परम्परा को माननेवाले भारतवासी थे और आज सारी परम्परायें कहाँ छिप गयीं? आज विश्वगुरु भारत के समक्ष सभी प्रश्न यक्ष की चुनौती बनकर खड़े हैं। धर्मराज युधिष्ठिर की तरह वनवास की पीड़ा भोगते जगदगुरु विश्वगुरु भारत की प्यास तब तक नहीं बुझेगी जब तक इन प्रश्नों के उत्तर न्यायोचित रूप में न मिल जायें।

स्वतंत्रता का सही अर्थ खोजना आज राष्ट्र के प्रत्येक प्राणी का कर्तव्य है क्योंकि आज स्वतंत्रता के नाम पर पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, प्रशासनिक हर स्तर पर जो अनुशासन हीनता, उच्छृंखलता, परावलम्बनता, असहिष्णुता, संवेदनहीनता, स्वार्थता पनपी है उससे प्रत्येक प्राणी का जीवन टूट रहा है, नैतिकता सिसक रही है। व्यक्तिगत जीवन में स्वतंत्रता की गतिविधियाँ होनी चाहिए लेकिन एक निश्चित सीमा / परिधि तक। स्वतंत्रता के दूध में उच्छृंखलता, स्वच्छन्दता, असामाजिकता, अनुशासनहीनता, स्वार्थता, अन्याय, अत्याचार, पापाचार, भ्रष्टाचार, फूट कलह, वैमनस्य, हिंसा, आतंक, शोषण, अनीति, पक्षपात का विष इतना नहीं मिलाना चाहिए कि वह खाद्य ही अखाद्य बन जाये। स्वतंत्रता सत्प्रवृत्तियों को मिलानी चाहिए, दुष्प्रवृत्तियों को नहीं। इस तथ्य को यदि आज का प्रत्येक भारतवासी ध्यान में रखकर अपने आचरण में सत्य प्रवृत्तियों को क्रियान्वित करे तो हजारों लाखों कुर्बानियाँ, बलिदानों की रशम वह प्रयोजन पूरा करेगी जो उसका मुख्य उद्देश्य है अर्थात् भारत की गुप्त-सुप्त-लुप्त सभ्यता संस्कृति पुनः उभर कर पुनः विश्वगुरु का रूप ले लेगी।

आज मैं इतनी तेज धूप में इतनी दूर इसीलिए चलकर आया हूँ कि बच्चों के अंदर छिपी चेतना शक्ति जागृत हो। यह सब कार्य आज के छोटे बच्चे ही कर सकते हैं। चंद्रगुप्त मौर्य ने 16 स्वप्न देखे। उसमें एक स्वप्न था कि दो बछड़े रथ को खींच रहे हैं। इसका अर्थ यही है कि इस काल में धर्म की, राष्ट्र की, समाज की स्थिति की सुरक्षा, समृद्धि, रक्षा नौजवान ही करेंगे। इसके लिए आवश्यक है इन छोटे बच्चों को योग्य शिक्षा से सुसंस्कारित करना। जब तक हम बच्चों में सुसंस्कारों का बीजारोपण नहीं करेंगे तबतक ये कैसे परिवार, समाज, देश में रक्षा, सुरक्षा, समृद्धता, सम्पन्नता की फसल पैदा करेंगे। विशेषतः मानव जीवन में बाल्यावस्था के संस्कार ही अधिक प्रभावी होते हैं। बाल्यावस्था में सुसंस्कारित होने पर मानव स्व-परोपकारी रचनात्मक कार्य करता है, सुसंस्कारित होने पर

स्व-पर अपकारी विध्वंसात्मक कार्य करता है। बाल्यावस्था में शीघ्र एवं सुदृढ़ संस्कार पड़ने का कारण यह है कि बालक के मन में किसी विशेष प्रकार से विकार भाव, छल कपट, तनाव, कषाय, दुराग्रह, हठग्राहिता नहीं होती जैसे सफेद कागज पर इच्छानुसार किसी प्रकार का वर्ण का लेप करने पर वह वर्ण सहज रूप से उसके ऊपर चढ़ जाता है, उसी प्रकार बालक का कोरा मन, स्वच्छ दिल में संस्कार शीघ्रता से रम जाते हैं। कुम्भकार योग्य मृदु मिट्टी से अपनी इच्छानुसार विभिन्न पात्र बनाता है। पात्र बनाते समय पात्र को सुडैल, सुन्दर बनाने के लिए पात्र को एक लकड़ी के फलक से पीट-पीटकर बनाता है। फलक को पीटते समय पात्र टूट-फूट न जाये इसलिए अन्दर हाथ भी पसार कर रखता है। उस मृदु पात्र में इच्छानुसार विभिन्न चित्र भी बनाता है। जब तक पात्र नहीं सूख जाता अथवा भट्टी में रखकर नहीं पकता, तब तक उसमें विभिन्न परिवर्तन कर सकता है, परन्तु जब पात्र सूख जाता है तब उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। सूखे पात्र में परिवर्तन करना कष्टसाध्य के साथ-2 असम्भव हो जाता है और कभी-2 फूट भी जाता है। इसी प्रकार बाल्यावस्था से मस्तिष्क (ब्रेन) मृदु रहता है। ब्राउन कलर (भूरा रंग) का लचीला स्तिंग्ध चिपचिपा तरल वस्तु से निर्मित होता है। बाल्यावस्था में यह मस्तिष्क अधिक मृदु रहता है जिसके कारण मस्तिष्क के ऊपर की सतह पर तरंगायित भंगुर होते हैं। जिसके कारण ग्रहण एवं स्मरण होता है। भंगुरता एवं तरंग अधिक होने से ग्रहण एवं स्मरण कम हो जाता है। आयु वृद्धि होते-होते मस्तिष्क मृदु से कठोर होता जाता है जिससे भंगुरता कम होती जाती है, जिससे ग्रहण-स्मरण कम होता जाता है। इसीलिये बाल्यकाल का संस्कार अत्यन्त प्रभावी एवं चिरस्थायी होता है। यह बाल्यकाल का संस्कार ही जीवन का मूल प्रेरणा स्रोत होता है, इसलिये उसका प्रभाव जीवन भर पड़ता है। जिस प्रकार ग्रामोफोन की मृदु प्लेट में जो संगीत भाषण आदि टेप करके सुनाया जाता है वही संगीत आदि ग्रामोफोन मशीन में प्लेट को डालकर चालू करने से सुना जा सकता है, वही संस्कार जीवन भर पुनरावृत्त हो जाता है।

अच्छा संगीत टेप करने पर अच्छा संगीत सुन सकते हैं इसी प्रकार बाल्यकाल में अच्छे संस्कार डालने पर जीवन भर सुसंस्कृत आचार-विचार को प्राप्त कर सकता है तथा कुसंस्कार डालने पर जीवन भर कुआचार-विचार रहेगा।

बाल्यावस्था के संस्कार मानो पारसमणि है। जैसे, पारसमणि के संपर्क से लौह

स्वर्ण बन जाता है, उसी प्रकार बाल्यावस्था के वे संस्कार रूप पारसमणि से जीव स्वर्ण के समान, शुद्ध बहुमूल्य बन जाता है। विद्या आदि सुसंस्कार से सुसंस्कृत जीवन ही महत्वपूर्ण है, संस्कार से रहित जीव कागज के फूल के समान केवल बाहर से सुन्दर है।

रूप यौवन से सम्पन्न एवं विशाल कुल में जन्मलेने वाला भी विद्या से रहित, शोभा को प्राप्त नहीं होता है, जैसे सुगन्ध रहित किंशुक फूल शोभा को नहीं पोता है

स्वदेशे पूज्यते राजा, स्वग्रामे पूज्यते प्रभुः ।

स्वगृहे पूज्यते मुख्यो, विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ॥

स्वदेश में राजा की पूजा होती है, उसी प्रकार स्वग्राम में मुखिया की पूजा होती है, स्वघर में मूर्ख की भी पूजा होती है, किन्तु विद्वान की सर्वत्र पूजा होती है।

येषां न विद्या न तपो न दानं, ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः ।

ते मर्त्यलोके भुवि भार भूता । मनुष्यरूपेण मृगाश्चरंति ॥

जिसने विद्या अध्ययन नहीं किया, तप अध्ययन नहीं किया, वह मनुष्य लोक में पृथ्वी के लिये भार स्वरूप होकर, मनुष्य रूप से पशु होकर विचरण करता है अर्थात् उपरोक्त गुण से रहित मनुष्य न स्वयं का उपकार करता है, न दूसरों का उपकार करता है इसलिए वह मनुष्य के आकार में पशु समान है।

विद्या नाम नरस्य रूपमधिक प्रच्छब्नगुप्तं धनम् ।

विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरुणां गुरुः ।

विद्या बन्धुजने विदेशगमने विद्या परा देवता ।

विद्या राजसु पूजते न च धनं विद्याविहीनः पशु ॥

विद्या मनुष्य के लिये सौन्दर्य, गुप्तधन है। विद्या मनुष्य के लिये भोग को देने वाली, यश को करने वाली, सुख को करने वाली है। विद्या गुरु की भी गुरु है। विद्या विदेश गमन में बन्धुजन के समान सहायक होती है। विद्या देवताओं की भी देवता है। विद्या से राज्य की भी पूजा प्राप्त होती है, परन्तु धन से उपरोक्त गुण प्राप्त नहीं होते हैं इसीलिये विद्या से रहित नर, पशु तुल्य है।

उत्तम विद्या से सुसंस्कृत जीवन सुख से व्यतीत होता है। विद्या एवं सुसंस्कार से रहित मनुष्य का जीव दुःख पूर्ण होता है—

काव्य शास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम् ।

व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा ॥

बुद्धिमानों का समय काव्य शास्त्र अध्ययन में, सुख शान्तिमय व्यतीत होता है परन्तु मूर्खों का समय व्यसन, निंद्रा और कलह में व्यतीत होता है। अतः विद्या, ज्ञान, विज्ञान, सुसंस्कार से मणित व्यक्ति ही देश के लिये, राष्ट्र के लिये भूषण स्वरूप है। केवल बाह्य-वेशभूषा, फैशन आदि से कोई भी यथार्थ से अंतरंग सुन्दरता को प्राप्त नहीं कर सकता है। शरीर की सजावट तो केवल शव की सजावट तथा चर्मकारी का कार्य है। गुणों का संस्कार ही यथार्थ संस्कार है।

ग्रीक के महान् दार्शनिक सुकरात शरीर से ठिगने एवं असुन्दर थे। वे रोज दर्पण में अपना मुख देखते थे। उनको दर्पण में अपना मुख देखते हुए उनके एक मित्र ने अनेक बार देखा। उनका मित्र आश्चर्य में पड़ गया कि सुकरात स्वयं कुरुप होते हुए भी अपना मुख बार-2 क्यों देखते हो? सुकरात गंभीर भाव से बोले कि हे मित्र! मैं इसलिये अपना मुख देखता हूँ कि मेरा रूप तो असुन्दर है किंतु मैं स्वयं की आत्मा को सुसंस्कृत बना दूँ। जिससे इस शरीर की असुन्दरता छिप जायेगी, इसी प्रकार जिसका सुन्दर रूप है उसको भी अपना मुख दर्पण में देखना चाहिए। मित्र ने पूछा सुन्दर रूप होते हुये भी दर्पण में मुख क्यों देखना चाहिये? सुकरात बोले कि सुन्दर रूप होते हुये अपना रूप इसीलिये देखना चाहिये कि कहाँ रूप तो सुन्दर हो, परंतु अन्तरंग में कुसंस्कार रूपी दानव छिपा न रह जावे। यदि रूप सुन्दर है किंतु अन्तरंग में दानव छिपा रह जाय तो उसकी सुन्दरता का कोई भी मूल्य नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि अन्तरंग सुन्दरता ही यथार्थ सुन्दरता है न कि बाह्य सुन्दरता। जो अन्तरंग से सुन्दर है उसे बाह्य सुन्दरता की आवश्यकता है। कहा भी है—

हस्तस्य भूषणं दानं, सत्यं कंठस्य भूषणम् ।

श्रोतस्य भूषणं शास्त्रं, भूषणैः किं प्रयोजनम् ॥

हाथ (हस्त)का भूषण दान है, कंठ का भूषण सत्य है, कर्ण का भूषण शास्त्र श्रवण है, उपरोक्त भूषणों से जो सुसज्जित है उसे आभूषण की क्या आवश्यकता है?

उपरोक्त समस्त विवरण से यह सिद्ध होता है कि बाल्यावस्था में बच्चों के ऊपर विशेष संस्कार पड़ता है, परंतु संस्कार इलाने वाले भी स्वयं सुसंस्कारित

होने चाहिये। यदि माता-पिता, गुरुजन असंस्कारित हैं तो उनका कुसंस्कार भी बच्चों के ऊपर विशेष पड़ता है।

जैसे अप्रज्ञविलित दीपक बुझे हुए दीपक को कभी प्रज्ञविलित नहीं कर सकता हैं। एक लोह चुम्बक एक लोहखण्ड को चुम्बक बना सकता है क्योंकि जिसके पास कुछ होता है वही दूसरे को कुछ दे सकता है। पूज्यपाद स्वामी ने कहा है—

अज्ञानोपास्तिज्ञानं ज्ञानं ज्ञानि समाश्रयः।

ददाति यत्तु यस्यास्ति सुप्रसिद्धिभिदं वचः॥

अज्ञानी की उपासना, संगति करने से अज्ञान की प्राप्ति होती है तथा ज्ञानी की उपासना, संगति करने से ज्ञान की प्राप्ति होती है। ठीक है, सुप्रसिद्ध उक्ति है कि जिसके पास जो होता है वही देता है इसलिये बच्चों को संस्कार करने का अधिकारी वही है जो स्वयं सुसंस्कारित हो।

स्वयं आचरण किये बिना दूसरे को उपदेश देने पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है। इसलिये उपदेश देने के पहले स्वयं उस उपदेश के अनुसार आचरण करना चाहिये।

पद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोः जनः।

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

श्रेष्ठ महापुरुष जो-2 आचरण करते हैं, वही आचरण अन्य लोग अनुकरण करते हैं, क्योंकि मनुष्य एक अनुकरण प्रिय प्राणी है। महापुरुष जो आदर्श प्रमाण प्रस्तुत करते हैं लोग उसका अनुकरण करते हैं। क्योंकि ‘महाजनः येन गता सा पन्था’ अर्थात् महाजन जिस मार्ग में गमन करते हैं, अन्य साधारण लोग उनका अनुसरण करते हैं।

- ★ अनुपलब्धि का अप्रयोग अधिक हानिकारक नहीं है परन्तु उपलब्धि का दुरुपयोग अधिक हानिकारक है।
- ★ असंतुलित एकांगी विकास वस्तुतः विकास नहीं विनाश है।
- ★ अति प्रवृद्ध धर्म (वृद्ध, बूढ़ा) अकर्मण्य होकर क्रान्ति के बिना शान्ति दायक नहीं बन पाता है।

— आ. रत्न श्री कनकनंदीजी गुरुदेव



त्यसन से विनाश तथा निर्वसन से विकास

धर्मसभा को संबोधित करते हुए आचार्यश्री कनकनंदीजी गुरुदेव ने कहा कि मानव विश्व का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है, क्योंकि मानव स्वयं के पुरुषार्थ के द्वारा मानव से महामानव एवं महामानव से भगवान् बन सकता है। मानव को छोड़कर विश्व में ऐसा कोई भी जीव नहीं है जो भगवान् बनने की सामर्थ्य रखता हो। मानव ही स्वयं में निहित अनंत सुप्त शक्तियों को पूर्ण विकसित करके अखण्ड पिण्ड स्वरूप ‘सत्यं शिवं सुन्दरम्’ ‘सच्चिदानन्दम्’ अवस्था को प्राप्त कर सकता है। अतः मानव जन्म की उपलब्धि ही महान् श्रेष्ठ उपलब्धि है। ऐसी श्रेष्ठ, ज्येष्ठ, अमूल्य, बहूमूल्य निधि को पाकर क्या करना चाहिए? आत्महित करना चाहिए। वह आत्महित कुसंगति, व्यसन का त्याग करके एवं स्व-पर उपकारी तरण-तारण गुरु के अमृतोपम वचनों को धारणकर जीवन में साकार करना चाहिए।

बड़े ही दुःख की बात है कि मानव अपने परम लक्ष्य को भूलकर अनैतिक व्यवहारों से दानवता की ओर बढ़ रहा है विभिन्न व्यसनों का दास बनकर शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक अनेक दुःखों को आमन्त्रित करता है। बड़े ही आश्चर्य की बात है कि महान् विवेकी, तर्कशील, बुद्धिशील सुखेच्छु मानव धन खर्च करके विभिन्न प्रकार की आपत्तियों को खरीदता है। ऐसे सिगरेट, बीड़ी पीने से टी.बी. कैन्सरादि अनेक रोग होते हैं, आयु क्षय होती है। इससे सिद्ध होता है कि व्यसनी लोग पशु से भी मृत्यु हैं।

मद्य, मांस, मछली, अण्डा, हेरोइन, तम्बाकू आदि तामसिक आहार होने के कारण मानव तामसिक भावों से आक्रान्त हो जाता है जिससे वह मानव न होकर दानव हो जाता है। नरराक्षस होकर वह मानवता के विपरीत कार्य कलह, अन्याय, अत्याचार, हिंसा, युद्ध, आतंक एवं भ्रष्टाचार करता है।

विश्व में महायुद्ध से लेकर छोटे से छोटे कलहादि सभी व्यसनों के कारण ही होते हैं। परस्त्री के कारण रामायण का युद्ध, द्यूत व्यसन के कारण महाभारत युद्ध से लेकर ग्रीक आदि प्राचीन श्रेष्ठ सभ्यता के पतन के कारणों में व्यसनों का योगदान सर्वोपरि है। वर्तमान युग खोज का युग होने के कारण मानव ने अनेक व्यसनों

की खोज की है। ये व्यसन केवल सात ही नहीं है। अनेकों हैं। जैसे अश्लील सिनेमा, टी.वी. प्रोग्राम, अश्लील अनैतिक, काल्पनिक कुसाहित्य का लिखना-पढ़ना, हिसात्मक, रोगकारक, बहुमूल्य प्रसाधन सामग्रियों का प्रयोग करना, कामचोरी, आलस्य, दहेज घूसखोरी, चापलूसी, फैशन, दिखावा आदि व्यसन ही हैं।

निर्वसनी के लिए व्यसन से दूर रहना सरलतम है। प्राथमिक अवस्था में व्यसन को दूर करना सरल है, लेकिन व्यसन से अभ्यस्त जीवों को व्यसन से दूर होना कठिन है, परंतु असंभव नहीं है। दृढ़ संकल्पशक्ति, अभ्यास लगन से असंभव प्रतीत होने वाला भी संभव हो जाता है। जीवन को सरस, परिवार को स्वर्गसम, राष्ट्र को महान् इहलोक और परलोक को सुखमय बनाने के लिए दृढ़ संकल्प शक्ति के साथ समस्त व्यसनों को मल के समान समझकर त्याग करना चाहिए। प्रत्येक जीव अमृत का पुत्र है। अमृतसम है। अमृतस्वरूप होते हुए भी विषयुक्त बन रहा है। इस व्यसनरूपी विष से हम मुक्त तभी हो पायेंगे जब यथार्थ स्वरूप का जीवन में आचरण करेंगे।

एक राजा ने संत से ज्ञान प्राप्ति की इच्छा प्रगट की। संत ने देखा अभी इसमें ज्ञान की पात्रता नहीं है। संत ने राजा से कहा— राजन् कल आपके महल में आकर मैं आपको ज्ञानामृत दूँगा। अगले दिन संत राजदरबार में पहुँचे। राजा ने संत के भोजन हेतु बहुत सुंदर व्यञ्जन-पकवान बनाये। राजा ने संत से कहा पहले आप भोजन करें बाद में मुझे ज्ञानामृत देना। संत ने भोजन लेने हेतु अपना गंदा पात्र राजा के आगे कर दिया। राजा गंदे पात्र को देखकर भोजन परोसते-2 रुक गया और संत से कहने लगा आपका पात्र गंदा है इसमें दिया हुआ भोजन खराब हो जायेगा। इसीलिए स्वच्छ पात्र में भोजन दूँगा। संत ने राजा को समझाया अभी तुम में ज्ञानामृत ग्रहण करने की पात्रता नहीं है पहले अपने अंदर से व्यसन, वासना की गंदगी निकालकर मन को शुद्ध करो व पवित्र, सरल-सहज मन में ही ज्ञान रहता है। जब तुम अपना खाद, मिट्टी जल से उत्पन्न भोजन नहीं देना चाहते तो मैं ज्ञानामृत कैसे दे सकता हूँ? जब तक तुम व्यसन त्याग करके पात्र को विशुद्ध नहीं बना लोगे, स्वच्छ नहीं कर लोगे तब तक मेरा दिया हुआ उपदेश कार्यकारी नहीं होगा। जिस प्रकार गंदे पात्र में अच्छा दूध भी फट जाता है उसीप्रकार व्यसनयुक्त जीवन टूट जाता है। गीता में श्रीकृष्ण ने भी कहा है—

युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।

युक्त र्यभाव बोधस्य योगे भवति दुःखहा॥

योग, ध्यान, पूजा पाठ तब कार्यकारी होते हैं जब योग्य, युक्त आहार-विहार-क्रियायें उत्तम, यथार्थ रूप से की जायें। नहीं तो संकट, विपत्ति, नाश का कारण बनता है। पूर्वाचार्यों ने भी लिखा है कि—

व्यसन चित्त चित्तानां गुणाकोऽपि न नश्यति।

न वैदुष्यं न मानुष्यं नाभिजात्यं न सत्यवाक्॥

व्यसन में आसक्त चित्तवाले मनुष्य की विद्वता, मनुष्यता, उच्च कुलीन आचार-विचार, सत्य वचन आदि सम्पूर्ण मानवीय गुण नष्ट हो जाते हैं। इसीलिये आचार्यों ने कहा है कि जो व्यसनों से युक्त है वह धर्मोपदेश ग्रहण करने की योग्यता नहीं रखता। जो व्यसन त्यागी होते हैं वही संयम, आचरण को ग्रहण करता है। व्यसनी तो पवित्र धर्म को भी विकृत कर देता है।

हर धर्म संप्रदाय ने ग्रन्थों में व्यसन को पाप बताया है। आज मैं प्राचीन राजा-महाराजाओं के कुछ उदाहरण दूँगा। जो सामान्य पुरुष नहीं बल्कि महापुरुष थे। वे भी जब एक व्यसन में आसक्त हुए तब विनाश को प्राप्त हुए। राजा दशरथ, श्रेणिक आदि बड़े-2 राजा थे लेकिन शिकार व्यसन के कारण दुःख विनाश को प्राप्त हुए। राजा दशरथ शिकार खेलने जब जंगल में गया तब किसीकी आवाज सुनते ही दूर से ही शब्द भेदी बाण छोड़ दिया। वह शब्द भेदी बाण श्रवणकुमार को लग गया और मृत्यु को प्राप्त हुआ। उसके माँ-बाप ने पुत्र वियोग से दुःखी होकर प्राण विसर्जित करते समय राजा दशरथ को श्राप दिया कि जिस प्रकार हम पुत्र वियोग में तड़प-2 कर प्राण त्याग रहे हैं उसी प्रकार तुम भी पुत्र वियोग की पीड़ा में तड़प-2 कर प्राण त्याग करोगे। और यही हुआ राजा दशरथ ने राम का जब राज्य तिलक किया तब रामचंद्र को जंगल जाना पड़ा और राजा दशरथ को अन्तिम समय में पुत्र वियोग का दुःख सहन करना पड़ा।

राजा श्रेणिक तो पशु-पक्षियों का ही नहीं बल्कि दिग्म्बर संतों का भी शिकार करता था। इसीलिए सप्तम नरक की आयु का बंध किया। श्रेणिक रावण, कंस, दुर्योधन से भी अधिक दुष्ट, क्रूर था जबकि रावण परम मुनि भक्त था।

प्राचीन कालीन राजा-महाराजा अधिकांशतः शिकार, समर, सुरा, सुंदरी के

व्यसनी होते थे। शिकार करके मासुम पशु पक्षियों का शिकार करके उनके सींग, खाल, हड्डियाँ राजमहलों में सजाते थे। विश्व इतिहास इस बात का साक्षी है कि बड़े-2 राज परिवार शिकार व्यसन के कारण जड़ से समाप्त हो गये। होना ही चाहिए क्योंकि स्वयं का उत्थान-पतन स्वयं पर आधारित है। जो जैसा करता है उसे वैसा ही फल मिलता है।

'As you so, so you reap.' गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है कि "भगवान् तुम्हारी पूजा—आराधना से खुश होकर तुम्हारे पापों को क्षमा नहीं कर सकता।"

धर्मराज युधिष्ठिर सर्वगुण सम्पन्न थे लेकिन महाव्यसनी जुआरी थे। एक जुआ व्यसन के कारण स्वयं की अपकीर्ति हुई, राज्य हारे, वनवास, अज्ञातवास में कष्टोंको सहन किया, द्रोपदी को हारे एवं द्रोपदी का भरी राजसभा में चीरहरण हुआ।

वैदिक साहित्य के अनुसार नल—पुष्कर दो भाई थे। नल इतने विद्वान, गणितज्ञ, राजनीतिज्ञ सभी विद्याओं के जानकार थे। गणित के इतने प्रकाण्ड विद्वान थे कि एक सेकेन्ड में पेड़ के सभी पत्ते—फल—फूल—डालियाँ गिन लेते थे। लेकिन जुआ खेलने के कारण सम्पूर्ण राज्य हार गये। पत्नी के साथ जंगल में पहुँचे वहाँ भी पक्षी उनकी धोती ले गया और अंत में पत्नी की आधी साड़ी फाड़कर दिन गुजारने पड़े। इस प्रकार जुआ व्यसन के कारण सर्वगुण संपन्न व्यक्ति को भी अपार कष्ट, अपमान सहन करना पड़ा।

आज भी दीपावली एवं पर्वत त्योहारों के अवसर पर यू.पी., हरियाणा, दिल्ली, रोहतक साइड में युधिष्ठिर का अनुकरण करके जुआ खेलते हैं। केवल जुआ खेलना ही जुआ नहीं बल्कि ताश खेलना, शतरंज, चौपडपट्टी आदि खेल खेलना भी जुआ है। पढ़े—लिखे लोग अधिकांशतः ताश शतरंज समय पास करने के लिए खेलते हैं। भले ही इन खेलों में रूपयों की हार जीत नहीं है फिर भी हार—जीत की भावना तो निहित होती ही है, समय, श्रम व्यर्थ जाता है। जापानी लोग इन खेलों को पाप समझते हैं क्योंकि इसमें समय व श्रम, धन आदि व्यय होता है।

चारुदत्त नामक व्यक्ति महान पंडित, विद्वान था। वह अध्ययन का इतना प्रेमी था कि शादी होने के बाद पत्नी के साथ भी नहीं रहता था। जब उसकी माँ ने पुत्र की ऐसी अवस्था देखी तो उसने वेश्या के जाल में फँसाकर उसे वेश्या के घर पहुँचा दिया। वेश्या ने चारुदत्त के साथ जुआ खेला और जुए में हरा दिया। चारुदत्त 32 लाख स्वर्ण दीनार, राजमहल, सब कुछ जुये में हारकर वेश्या के

घर ही रहने लगा। उसकी पत्नी एवं माँ गाँव के बाहर झोपड़ी बनाकर रहती थी इस प्रकार जिस व्यसन को हम छोटा समझते हैं वह छोटा नहीं बल्कि सर्वस्व विनाश का कारण है।

रावण जैन धर्म के अनुसार विद्याधर क्षत्रिय था। उसको बहुत सी विद्यायें सिद्धीं, शरीर में अपार बल था। कहते हैं उसके दस सिर, बीस हाथ थे। सही है इसका मतलब यह है कि रावण के पास दस व्यक्तियों की बुद्धि लब्धि एवं वीर्य शक्ति थी। लंका सोने की थी, पुष्पक विमान आदि सत्ता सम्पत्ति विपुल मात्रा में थी लेकिन एक पर नारी हरण के कारण नरक जाना पड़ा, एवं सोने की लंका का विनाश हुआ। एक-2 व्यसन के कारण महापुरुषों का विनाश हुआ एवं साथ-2 परिवार, समाज, राष्ट्र, सत्ता, सम्पत्ति, यश, कीर्ति आदि का विनाश हुआ एवं दुर्गति की प्राप्ति हुई जो सातों व्यसनों में आसक्त है उनका क्या होगा?

व्यसन से शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक, नैतिक, प्राकृतिक सभी दृष्टियों से हानि विनाश ही होता है। चावल, महुआ, गुड़ आदि को घड़े में भरकर उसको जमीन में गाड़ देते हैं। अनेक दिनों में चावलादि सड़ने पर उसमें अनेक लट आदि त्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं। पुनः उसको उबाल करके मद्य निकालते हैं— इसलिये मद्य त्रस जीवों का रस ही है। मद्य के वर्ण के सदृश्य असंख्यात सूक्ष्म जीव प्रत्येक समय मद्य में रहते हैं। मद्यपायी के मद्यपान से उसकी ज्ञान तन्तु शिथिल हो जाती हैं, जिससे मन मोहित होकर स्मरण शक्ति को विवेक शक्ति को खो डालता है। जिससे वह सदाचार को भूल जाता है, पागलों के समान कुछ न कुछ बकता रहता है, माँ बहिन, स्त्री में किसी प्रकार का भेद नहीं देखता है, अनैतिकतापूर्ण आचरण भी कर लेता है तथा दूसरों को अपशब्द भी कहता है, मारपीट भी करता है, अपना कर्तव्य सुचारू रूप से पालन नहीं कर पाता है। इससे पापास्व होता है। मद्य में स्थित जीवों के धात से भी पापास्व होता है। शरीर, मन, ज्ञान—तन्तु, स्नायु, पाचन शक्ति मद्य से क्षीण होने के कारण शरीर में अनेक रोग एवं अनेक मानसिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं, जिससे वह क्षीण होकर विशेष कोई कार्य नहीं कर पाता है। अर्थाभाव से बाल बच्चे अशिक्षित रहते हैं एवं खाद्य अभाव से योग्य पोषण भी नहीं हो पाता है। इससे संतान को भी बहुत बड़ी क्षति पहुँचती है। मद्यपान से अर्थ(धन) भी व्यर्थ में ही खर्च होता है। अज्ञानी मनुष्य अर्थ को देकर मद्य पीकर अनेकों अनर्थों को निमंत्रण देता है। एक पशु की तरह

जान बूझकर अनर्थ अर्थात् विपत्तियों को निमंत्रण देकर स्वीकार करता है इस दृष्टि से वह पशु से भी अधिक पशु है।

केवल मध्यपान इस व्यसन में गर्भित नहीं है, इसके साथ-साथ विदेशी ब्रांडी द्विस्की, रम, ताड़ी, गांजा, भांग, चाय काफी, चरस, तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट, अफीम, गुटखा, पान-पराग आदि-आदि मध्य व्यसन के अन्तर्गत होते हैं। उपरोक्त नशीले पदार्थों में अनेक विषाक्त रसायन पदार्थ रहते हैं जिससे टी.बी., कैंसर, रक्तचाप, दमा, खाँसी, कब्जियत, बढ़हजमी, सिरदर्द, अल्सर आदि अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। बीड़ी-सिगरेट-जर्दा-तम्बाकू में निकोटिन विष होता है। चाय में कैफीन विष रहता है। मध्य में अल्कोहल विष रहता है। वे विष शरीर को बहुत क्षति पहुँचाते हैं और उनसे कैंसर आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

महात्मा गाँधी स्वतन्त्रता के पहले बोलते थे एवं उनकी तीव्र भावना थी कि भारत स्वतन्त्र होने के पश्चात् मुझे सर्वप्रथम एवं सर्वश्रेष्ठ कुछ करना है तो वह है भारत में पूर्ण रूप से मध्य-निषेध। महात्मा गाँधी यहाँ तक कहते थे कि (Tea is white poison) चाय सफेद विष है। यदि चाय को वे सफेद विष मानते थे तो क्या मद्यादि साक्षात् विष नहीं है? ऐसा नहीं कहते होंगे? इससे आप सहज ही समझ सकते हैं। परन्तु अत्यन्त शर्म की बात है कि वर्तमान की स्वतन्त्र सरकार स्वच्छन्द होकर स्वयं मध्य फैक्टरी खोलकर मध्य की दुकान प्रत्येक गाँव में खोलकर भारत की जनता को विष पिलाने में दिन रात कार्यरत है।

सरकार सोचती है कि इससे कुछ आर्थिक लाभ देश को होता है, परन्तु मूँढ़ सरकार नहीं जानती है कि वह अर्थ किसका है और उस मध्य से जो शारीरिक मानसिक क्षति होती है उस क्षति को पूर्ण करने के लिये सरकार को एवं जनता को कितना अर्थ व्यय करना पड़ता है। इससे उस लाभ की अपेक्षा व्यय कितना अधिक है। स्वास्थ्य के लिये सरकार अस्पताल खोलती है एवं रोगी बनने के लिये जनता को मध्य पिलाती है। इसलिये भारत की स्वतन्त्र सरकार को तथा प्रादेशिक शासकों को मध्य के प्रचारकों को कुछ पुँजीपतियों को मध्य का दुष्परिणाम जानकर उसका सम्पूर्ण शासकीय क्षेत्र में कानून लगाकर निषेध करना चाहिये तथा प्रजा को स्वयं प्रवृत्त होकर स्वेच्छा से मध्य तथा अन्य नशीली वस्तुएँ सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। अधिकांश लोगों का भ्रम है कि माँस खाना ही व्यसन है। बीड़ी सिगरेट, तम्बाकू गुटखा का

व्यापार अधिक करते हैं। उसमें भी जैनी अधिक करते हैं। महाराष्ट्र कर्नाटक में तम्बाकू की खेती अधिक करते हैं। तम्बाकू के एक वृक्ष पर लगभग 1 लाख कीड़े होते हैं और उन कीड़ों से फसल बचाने के लिए विष का छिड़काव करते हैं। विषाक्त प्रयोग करने से जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, मृदा प्रदूषण होता है। तम्बाकू की खेती के लिए बाढ़ नहीं लगाते क्योंकि तम्बाकू गधे भी नहीं खाते। चार पैर वाले गधे तो नहीं खाते लेकिन दो पैर वाले गधे अवश्य खाते हैं। स्वयं तो खाते हैं दूसरों को भी खिलाते हैं। अधिकांश व्यक्ति दुकान तो कपड़े आदि की करते हैं लेकिन ग्राहक को प्रलोभन देने के लिए बीड़ी, गुटखा, सिगरेट, तम्बाकू रखते हैं। भारत सरकार तक सभी व्यसनों को लाइन्सेंस, बढ़ावा देती है। भारत के पतन में सरकार भी मुख्य कारण है। इस पतन की विनाशलीला को 33 करोड़ देवता, 24 तीर्थकर भगवान, संविधान, न्यायालय, शिक्षा, मंदिर मूर्ति कोई भी नहीं रोक सकते। प्रकृति का बेलेन्स बिगड़ने पर अकाल भुखमरी, दुर्भिक्ष सूखा, अतिवृष्टि आदि दुष्काल होते हैं।

धर्मशास्त्रों में लिखा है व्यसनों के कारण नरक मिलता है, आयुर्वेद के अनुसार शारीरिक-मानसिक दुःख क्लेश, पीड़ा होती है। आर्थिक, नैतिक, आध्यात्मिक सभी दृष्टि से क्षति होती है। व्यक्ति की क्षति से परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व, धर्म सभी की हानि होती है।

इन सभी हानियों को प्रत्यक्ष देखते हुए व्यसन त्यागी शुद्ध चारित्र सम्पन्न सज्जनों को दुर्व्यसनी की संगति नहीं करनी चाहिए। जिन घरों में मध्यादिक के पान का व्यवहार होता है वहाँ श्रावक को भोजन-पान नहीं करना चाहिए। उनके पात्रों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। व्यसन त्यागी, शुद्ध चारित्र सम्पन्न सज्जनों को दुर्व्यसनी की संगति नहीं करनी चाहिए, दुर्व्यसनी के साथ संगति करने के, साथ में भोजन करने से, लेन-देन करने से उन दुर्व्यसनों का भावात्मक एवं द्रव्यात्मक परिणाम निर्व्यसनी के ऊपर भी पड़ता है। जैसे शीतल जल अग्नि के सम्पर्क से उष्ण हो जाता है, अच्छा दूध भी खट्टी चीज के सम्पर्क से फट जाता है, शुद्ध स्फटिक मणि भी विभिन्न वर्ण के संयोग से विभिन्न वर्ण रूप परिणित करता है। उसी प्रकार व्यसनियों की संगति से निर्व्यसनियों में भी परिणमन होता है, जैसे संक्रामक रोगियों के सम्पर्क से निरोगियों को भी रोग हो जाता है, व्यसनियों के सम्पर्क से निर्व्यसनी भी प्रायः कर व्यसनी बन जाते हैं। यह मनोवैज्ञानिक अनुभवगम्य

सिद्ध सिद्धान्त है कि समग्रुणी या समभावी में मित्रता होती है। इसलिये व्यसनियों की संगति में आने वाले को व्यसनी स्वयं के समान उसको भी व्यसनी बनाना चाहता है। इसलिए व्यसनी स्वयं की संगति में आने वाले को स्वयं के समान बनाने के लिए कोशिश करता है। जैसे शराबी स्वयं की संगति में आने वालों को पहले अपने पास की शराब आग्रह पूर्वक पिलाता है, उसकी संगति में आनेवाले जब शराब पीने में अभ्यस्त हो जाते हैं तब वह स्वयं शराब खरीदते हैं तथा पीते और पिलाते हैं। इस प्रकार धूम्रपान करने वाले बीड़ी सिगरेट आदि को जो स्वयं की संगति में आते हैं उन्हें देता है। इतना ही नहीं वर्तमान वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि दस बीड़ी पीने वालों की संगति में रहने वाले व्यक्तिको तीन बीड़ी पीने का नुकसान उठाना पड़ता है। धूम्रपान करने वाली या शराब पीने वाली माता की संतान भी माता के गर्भ से ही टी.बी., कैंसर आदि अनेक रोगों को लेकर पैदा होती है तथा दुग्धपान से भी अनेक हानिकारक तत्व माता से प्राप्त करती है जिससे संतान शारीरिक, मानसिक रूप से दुर्बल, रोग ग्रस्त रहती है। वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि बीड़ी, सिगरेट पीने वालों को तो रोग होता ही है किन्तु जहाँ तक उसका धुआँ जाता है वहाँ तक का वातावरण प्रदूषित हो जाता है तथा प्रदूषण में रहने वालों को 4-8 प्रकार के कैंसर होने की सम्भावना होती है। मेरा (लेखक) स्वतः का अनुभव है कि बीड़ी पीने वाले, जब मेरे पास आते हैं तब मेरा जी मचलता है। मानसिक तनाव एवं अशान्ति होती है। इस सब मनोवैज्ञानिक एवं स्वास्थ्य-वैज्ञानिक दृष्टिकोण को प्राचीन जैनाचार्यों ने अपने तीक्ष्ण ज्ञान से अनुभव करके बताया है कि, व्यसनी की संगति सर्वथा वर्जनीय है। व्यसनियों के घर, वस्त्र, पात्र, शरीर आदि भी प्रदूषित रहते हैं। इसीलिये व्यसनियों के घर नहीं जाना चाहिये। उनके घर पर या पात्र में भोजन नहीं करना चाहिए इससे व्यसनी से असहकार भी हो जाता है। उसकी संगति से उसको प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से सहकार भी मिलता है। जिससे उसको व्यसन सेवन में प्रचार-प्रसार में प्रोत्साहन एवं बल भी मिलता है। व्यसन का अर्थ ही दुःख होता है। प्रत्येक व्यसन स्वयं दुःख स्वरूप है। एवं दुःख का कारण है। व्यसन से इहलोक, परलोक दुःखमय हो जाता है। इसके साथ-साथ शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, राष्ट्रीय पतन होता है। व्यसनी

व्यसनों के अधीन होने के कारण स्वतन्त्र विचार शक्ति एवं हिताहित विवेक को खो देता है। विवेकहीन होने के कारण वह धर्म श्रवण करने के लिये, मनन करने के लिये, धारण करने के लिये एवं आचरण करने के लिये अयोग्य होता है। व्यसनियों के साथ धर्मात्मा व्यक्ति के सहवास, लेन-देन, बातचीत न करने के कारण वह धर्म नीति, सदाचार से अपरिचित रहता है। इसीलिये अन्य धर्मों के प्रचारकों के साथ-2 जैन धर्मों के आचार्यों ने प्राथमिकता रूप से भी श्रवण करने के लिये, मनन करने के लिये एवं आचरण करने के लिये सम्पूर्ण व्यसनों का त्याग करने के लिए उपदेश दिया यथा-

यः सप्तस्वेकमप्यत्र व्यसनं सेवते कुधीः।

श्रावकस्वं ब्रुताणः स जने हास्यास्पदं भवेत् ॥(41)

जो कुबुद्धि यहाँ पर एक भी व्यसन का सेवन करता है वह अपने को श्रावक कहता हुआ लोगों में हास्य का पात्र होता है। व्यसनी जीवित अवस्था में स्वयं दुःखी रहता है तथा परिवार जनों को भी दुःख पहुँचाता है। वह इस लोक में नारकीय जीवन यापन करता है एवं आगे जाकर मरणोत्तर जीवन में साक्षात् नारकी बनता है। इसीलिये मनु स्मृति में मनु महाराज ने कहा है-

व्यसनस्य च मृतयोश्च व्यसनं कष्टमुच्यते ।

व्यसन्वधोऽधो ब्रजति स्वर्गत्य व्यसनं मृतः ॥

व्यसनी जीवन जीने से मरण श्रेयस्कर है। व्यसन जीवन कष्टमय है। एवं व्यसनी मरने के पश्चात् नीचे से नीचे नरक में पतित होता है। निर्व्यसनी व्यक्ति मरने से ऊपर से ऊपर स्वर्ग की ओर गमन करता है। इसलिये निर्व्यसनी का मरण, व्यसनी के जीवन से भी श्रेष्ठ है।

सेवितानि क्रमांत्सप्त व्यसनान्यत्र सप्तसु ।

नयन्ति नरकोष्वेव ताव्यतः सन्मतिस्त्यजेत् ॥42॥

इस लोक में क्रम से सेवन किये गये व्यसन परलोक में सातों ही नरकों में ले जाते हैं। इसलिये सुबुद्धि वाले पुरुष को उनका त्याग ही करना चाहिए।

व्यसन सामान्यतः सात होते हैं एवं नरक सामान्य से सात होते हैं। मानो प्रकृति ने सात व्यसनों के लिए ही सात नरकों की रचना की है। राजर्जिभर्तृहरि ने आदर्शमय जीवनयापन करने के लिये जो अनिवार्य आचार-विचार हैं उनका निम्न प्रकार वर्णन किया गया है-

प्राणाधातात्रिवृत्तिः परधन हरणसंयमः सत्य वाक्यम्,
काले प्रदानं युवति जन कथा मूक भावः परेषाम्।
तृष्णा स्त्रोतो विभज्ञो गुरुषु च विनयः सर्वभूतानुकम्पा,
सामान्यः सर्वशारङ्गेष्वनुपहत विधिः श्रेयसामेज पंथा ॥

प्राण लेने से विमुखता, दूसरे के धन का हरण करने से अश्रद्धा, सत्य भाषण, समय पर यथा शक्ति दान, दूसरों की स्त्रियों के विषय में बातचीत न करना, तृष्णा के प्रवाह को रोकना, बड़े जनों से नम्र रहना, सब प्राणियों पर कृपा रखना ये धर्म के साधारण मार्ग हैं। जिनका समर्थन सभी शास्त्र करते हैं।

इहलोक-परलोक सुख के लिये शारिरीक, मानसिक स्वास्थ्य सम्पादन के लिए पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्र की उन्नति के लिए सम्पूर्ण प्रकार के व्यसन शरीर से एवं मन से त्याग कर देना चाहिए।

प्राचीन काल से प्रायः प्रत्येक धर्म में व्यसनों का निषेध किया गया है। इतना ही नहीं वर्तमान के मनोवैज्ञानिक, स्वास्थ्य वैज्ञानिक एवं समाजशास्त्री ने भी व्यसनों बहुमुखी अवनति एवं व्यसन त्याग करने से बहुमुखी उन्नति है। यह सिद्ध करके दुनिया के समुख प्रस्तुत किए हैं कि व्यसन त्याग करने में केवल धार्मिक दृष्टिकोण मात्र नहीं है किन्तु आर्थिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं स्वास्थ्य का दृष्टिकोण भी है। वैज्ञानिक शोध-बोध के कारण आज पाश्चात्य जगत व्यसन से दूर होता जा रहा है। किन्तु खेद के साथ कहना पड़ेगा कि आज भारत जैसे धर्म प्रधान एवं सभ्यता और संस्कृति के अग्रगण्य देश में व्यसन दिनों दिन वृद्धिको प्राप्त कर रहा है। इसके अनेक कारण हो सकते हैं। यथा—

1. व्यसन दुष्परिणाम का यथार्थ परिज्ञान का अभाव,
2. कुसंगति का प्रभाव,
3. टी.वी. सिनेमा, समाचार पत्र-पत्रिकाओं में व्यसनों का प्रचार,
4. माता-पिता, गुरुजन, अभिभावक का स्वयं व्यसनी होना
5. अनैतिकरूप में अधिक धन-सम्पत्ति का होना,
6. आधुनिकता के नाम पर, फैशन के तौर पर व्यसन का सेवन करना
7. योग्य नैतिक शिक्षा पद्धति का अभाव होना
8. मानसिक तनाव से ग्रसित होना
9. सरकार द्वारा व्यसनों का प्रचार-प्रसार होना

10. धार्मिक दृष्टिकोण में व्यसनों के त्याग का जो वर्णन है उसमें निस्सारता मानना

11. तात्कालिक क्षणिक उत्तेजना मूलक सुख का अनुभव होना

12. कुछ मिथ्या धर्म, ढोंगी साधु, कुशास्त्र में व्यसन के सेवन का प्ररुपण होना आदि विभिन्न कारण होते हैं।

आचार्यश्री ने खेद व्यक्त करते हुए कहा कि सम्पूर्ण पृथ्वी के लिए आध्यात्मिक गुरु के समान भारत के लोग अपने आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्य को विस्मरण करके व्यसनों की ओर अन्धों के समान ढौड़ लगा रहे हैं, इतना ही नहीं भारत की सरकार कुछ आर्थिक लाभ के लिये माँस, मद्य नशीली चीजें, आदिका प्रचार-प्रसार कर रही है। आज भारतीय नेता प्रायः स्वयं व्यसनी होते हैं तथा दूसरों को व्यसनी बनाने के लिये भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। भारतीय राष्ट्रीय चिन्ह अशोक चक्र है, उसके नीचे लिखा रहता है, ‘‘सत्यमेव जयते’’ अशोक चक्र यथार्थ से धर्मचक्र है। उस चक्र में 24 आरे, सिंह, बैल, घोड़े का चिन्ह अंकित रहता है। उपरोक्त सम्पूर्ण चिन्ह भारतीय प्राचीन ‘‘इतिहास’’ की गौरव गाथा मूल रूप से गाते रहते हैं। यह ऐतिहासिक प्रसिद्ध सत्य है कि अशोक ने धर्म का प्रचार अहिंसा के माध्यम से देश-विदेश में किया था। इसके प्रतीक स्वरूप चक्र का निर्माण हुआ था। परंतु और भी सूक्ष्म पौराणिक दृष्टिकोण से विचार करने पर इससे और भी अनेक निहित सत्य उजागर होते हैं जैसे 24 आरे, 24 तीर्थकर के प्रतीक हैं। वृषभ का अर्थ धर्म या जैन धर्म के वर्तमान कालीन आदि धर्म प्रचारक आदिनाथ भगवान हैं। सिंह पराक्रम या महावीर भगवान का चिन्ह है, अश्व दुतगामी अर्थात् प्रगति (उन्नति) या सम्पन्नाथ भगवान का चिन्ह है। इससे सिद्ध होता है कि यह राष्ट्रीय चिन्ह जैन धर्म के धर्मचक्र का भी प्रतीक है। इस सत्य, अहिंसा के प्रतीक स्वरूप अशोक चिन्ह को भारतीय सरकार अपना चिन्ह स्वीकार करते हुए भी उसके आदर्श के प्रतिकूल चलते हुए सत्य, अहिंसा का अपमान कर रही है। भारतीय लोग गर्व से नारा लगाते हैं— ‘‘सत्य, अहिंसा प्यारा है भारतवर्ष हमारा है’’ परंतु आचरण इसके विपरीत करते हैं, ‘‘सत्य, अहिंसा न्यारा है, भारतवर्ष हमारा है’’। अर्थात् भारत सरकार सत्य, अहिंसा को त्याग करके सत्ता लोलुपी होकर निहित संकीर्ण स्वार्थ की सिद्धि कर रही है। आयकर एवं विक्रय करके लोभ से मद्य, माँस, अण्डा, मछली आदि जो कि धन, धर्म, स्वास्थ्य, संस्कृति-सभ्यता-विध्वंसक वस्तु का प्रसार-प्रचार कर रही है। जिसे नागरिक लोग निःसंकोच होकर सेवन

करते हैं। उपरोक्त वस्तुओं के सेवन से नागरिकों का स्वास्थ्य नष्ट होता है। जिससे सरकार को हास्पिटल आदि की व्यवस्था करनी पड़ती है। मध्य, हेरोइन आदि नशीली वस्तुओं के सेवन से नागरिक विवेकहीन हो जाते हैं जिससे मार-काट, गुण्डागर्दी, आतंकवाद, युद्ध-विलाव फैलता है। जिसके कारण सरकार को पुलिस, सुरक्षा दल, न्यायालय आदि की व्यवस्था करनी पड़ती है। आर्थिक आय के लिए सरकार मध्य आदि का प्रचार करती है किन्तु मध्य सेवन से जो अनर्थ होता है उस अनर्थ से नागरिकों की सुरक्षा के लिये हास्पिटल, न्यायालय आदि की जो व्यवस्था की जाती है उसका व्यय, आय से भी अधिक हो जाता है। नीतिकारों ने ठीक ही कहा है—

“‘चोरी का माल मोरी में जाता है’” सरकार की नीति ऐसी है— चोर को चोरी करने के लिए कहना तथा कोतवाल को पकड़ने के लिए कहना। वर्तमान भारत सरकार की नीति देखकर एक नीति श्लोक याद आ जाता है। यथा—

माता यदि विषं दधात् पिता विक्रियते पुत्रः।

राजा हरति सर्वस्वं का तत्र परिवेदना॥

यदि माता पुत्र को विष पिलाती है तथा पिता पुत्र का विक्रिय करता है तथा राजा सर्वस्व हरण करता है वहाँ पर दुःख करने पर भी कोई लाभ नहीं है।

सरकार आय के लिये मध्य आदि का विक्रिय करके प्रजा का शोषण करती है तथा उसके सेवन से जो समस्याएं उत्पन्न होती हैं इन समस्याओं का समाधान करने के लिये प्रजा का शोषण करती है इसलिए राजा रक्षक नहीं, भक्षक है। स्वयं राजा भ्रष्ट पतित होने के कारण प्रजा भी नष्ट भ्रष्ट पतित हो रही है। क्योंकि ‘यथा राजा तथा प्रजा’। अर्थात् जैसा राजा होता है, प्रजा भी उसी प्रकार होती है। आज जो अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में तथा भारतवर्ष में भ्रष्टाचार, अनैतिक आचार आतंकवाद चल रहा है उसका प्रथम एवं प्रधान कारण व्यसन ही है। यदि यथार्थ में सुख शांतिमय जीवन-यापन करना है तो व्यसनों का त्याग करना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है।

केवल सरकार के ऊपर दोष थोकर सन्तुष्ट हो जाना बुद्धिमत्ता का कार्य नहीं है। क्योंकि व्यक्तियों का समूह ही समाज है, समाज का समूह ही राष्ट्र है। व्यक्ति राष्ट्र का परिचालन करता है इसलिए सरकार व्यक्ति से अभिन्न है। व्यक्ति सुधरेगा तो समाज सुधरेगा, समाज सुधरेगा तो राष्ट्र सुधरेगा व राष्ट्र सुधरेगा

तो अन्तर्राष्ट्रीय सुधार होगा। इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय सुधार के पूर्व व्यक्ति का सुधार अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आज सुधारवादी लोग नेता लोग भाषण के मंच पर आकाश-पाताल में नहीं समावेश होने योग्य बातें करते हैं किंतु स्वयं का ही सुधार नहीं कर पाते हैं। अतः आज जनजागृति की नितान्त आवश्यकता है। जनजागृति के लिये मन जागृति सर्वोपरि है। दृढ़ संकल्प से व्यसन त्याग करना सहज सरल है। जब तक दृढ़ संकल्प नहीं होगा तब तक व्यसन का भी त्याग नहीं हो सकता है भले ही उसके हानि लाभ का ज्ञान हो।

जैन धर्म सार्वभौमिक त्रिकाल अबाधित वैज्ञानिक समसामयिक बहुआयाम वाला धर्म है। पहले जैन धर्मविलम्बी, सदाचारी, निर्व्यसनी, कर्तव्यनिष्ठ थे। परन्तु आज गर्व से जैन कहलाने वाले भी माँस खाने में, शराब पीने में अन्य लोगों से पीछे नहीं है। जिस जैन धर्म में सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीवों की सुरक्षा के लिए पानी छानकर प्रासुक करके प्रयोग किया जाता था आज वही जैन अनन्तानन्त जीवों के पिण्ड स्वरूप शराब बिना छानकर दिन-रात पी रहे हैं। जैन धर्म अहिंसा परायण होने के कारण रात्रि में शुद्ध शाकाहार भोजन भी नहीं किया जाता है किन्तु आज जैन लोग रात में माँस, अण्डे, मछली, खाने लगे हैं। माँस अतिचार के अन्तर्गत चर्म से स्पर्श खाद्य वस्तु जैनियों को नहीं खानी चाहिए किंतु आज जैनी लोग अण्डा मछली आदि से मिश्रित बिस्किट, डबल रोटी आदि खाने लगे हैं। जैन लोग विशेषकर महिलायें सौन्दर्य के लिये रक्त, माँस, हड्डी, चर्म से निर्मित प्रसाधन सामग्रियों का बहुतायत से उपयोग कर रही हैं। पहले जैनियों का आचार-विचार आहार-विहार, इतना शुद्ध एवं नैतिक होता था जिससे जैनियों का प्रभाव सामाजिक राजनैतिक आदि प्रत्येक क्षेत्र में सर्वोपरि था किंतु आज जैन लोगों के सदाचार, नैतिक आचार-विचार, आहार-विहार से नीचे गिरने के कारण उनका महत्व बहुत नीचे गिर गया है। केवल उच्च कुल में जन्म लेने से या जिस कुल में जैन धर्म का परिपालन होता है उस कुल में जन्म लेने से मात्र जैन धर्म का पालन नहीं होता। अतः जैनियों का पूर्व गौरव को पुनः जगाने के लिए, गौरवपूर्ण जीवनयापन करने के लिए विश्व में जैन धर्म का सर्वोपरि आदर्श स्थापन करने के लिए सुप्त चेतना को जाग्रत करके आगे बढ़ना पड़ेगा। विशेष करके किशोर अवस्था तथा युवा-अवस्था में व्यसनों की बुरी लत पड़ जाती है। इसलिए माता-पिता, गुरुजन, मुनिराज का कर्तव्य है कि धर्म एवं राष्ट्र को उज्ज्वल एवं समुन्नत करने के लिए नई पीढ़ी को निर्व्यसनी सच्चारित्र एवं आदर्श बनाये। क्योंकि नई

पीढ़ी ही धर्म एवं राष्ट्र की भविष्यत् की धरोहर है। अतः मेरा अखिल मानव समाज के लिये, जैनियों के लिये तथा विशेषकर नवयुवक—युवतियों के लिये आशा भरा आग्रह आह्वान है कि आप लोग स्व—पर के लिए उपकार के एवं गौरवमय भविष्यवत् के लिए दृढ़ संकल्प होकर सम्पूर्ण पतन के कारण स्वरूप व्यसनों को मन—वचन काय से त्याग करे।

‘सर्वेऽपि सुखिनः भवन्तु सर्वे सन्तु निरामय।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु माकश्चित् दुःखामाप्नुयात् ॥’

सर्व जीव सुखी रहे, सर्व जीव निरोगी रहे, सर्व जीव मंगलमय भद्र बनें, कोई भी विश्व में दुःखी नहीं रहे।



स्वयं का अवलोकन तथा स्वकर्तव्य पालन करना ही जीवन जीने की श्रेष्ठ कला है

धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान के तत्वावधान में आचार्यरत्न श्री कनकनंदी जी गुरुदेव ने छःह दिवसीय ‘समर्पित कार्यकर्ता’ प्रशिक्षण शिविर के अंतर्गत धर्मसभा को संबोधित करते हुए कहा कि प्रत्येक जीव का अंतिम लक्ष्य सुख शांति, समृद्धि प्राप्त करना है। वह सुख स्वतन्त्रता, स्वावलम्बन मोक्ष में है। उस मोक्ष की प्राप्ति का उपाय रलत्रय की साधना, परिणामों की विशुद्धि, धार्मिक क्रियाओं को विवेक के साथ वृद्धिंगत करते रहना है।

वस्तुतः धर्म एक होते हुए भी पात्र की अपेक्षा गृहस्थ धर्म व मुनिधर्म दो प्रकार का है। वस्तुतः धर्म दो भागों में विभक्त नहीं है। बल्कि जो भी अपनी शक्ति, भक्ति, योग्यता, क्षमता के अनुसार जितना धारण करता है वही धर्म है। धर्म शब्द संस्कृत की ‘धृ’ धातु से निष्पन्न हुआ है। जिसका अर्थ होता है ‘धरना’ अर्थात् जो धारण किया जाता है वह धर्म है। लेकिन आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने ‘जो धरता है वह धर्म है’ ऐसा कहा है। जैसे किसी वस्तु को एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान पर धरना। इसी तरह जो जीवों को संसार के दुःखों से छुड़ाकर उत्तम सुख में धरता है वह धर्म है।

देशयामि समीचीनं धर्मं कर्म निर्वहणम् ।

संसार दुःखतः सत्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे ॥

जब कोई धर्म को धारण करेगा तभी तो वह उसे संसार के दुःखों से छुड़ाकर उत्तम सुख में धरेगा। यदि कोई धर्म को धारण ही नहीं करेगा तो वह उसे संसार के दुःखों से छुड़ाकर उत्तम सुख में कैसे धरेगा? क्योंकि उत्तम सुख को प्राप्त करने के लिए संसार के दुःखों से छुटकारा आवश्यक है संसार के दुःखों से छूटने के लिए उन दुःखों के कारणों से छूटना आवश्यक है। अतः जो संसार के कारणों को मिटाने में समर्थ है वही धर्म है।

संसार के दुःखों का कारण है कर्म बंधन। जो जीव की अपनी ही गलती का परिणाम है। वह कर्म बंधन जिससे कटे वही धर्म है। वह कर्म बंधन रलत्रय से कटता है अतः रलत्रय भी धर्म है। इसके विपरीत मिथ्या दर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्या चारित्र सांसारिक दुःखों के कारण हैं। यदि मिथ्यापाना दूर होकर सम्यक्पना आ जाये तो सांसारिक दुःखों से छुटकारा हो जाये। इसीलिए सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र को रलत्रय धर्म कहा।

धर्म शब्द का व्यवहार स्वभाव के अर्थ में भी होता है। जैसे अग्नि का धर्म ऊष्णता है, पानी का स्वभाव शीतलता है; जीव का स्वभाव/धर्म ज्ञान दर्शन है। जैसे सोने में मैल होता है तो वह मलीन होता है लेकिन मलीनता स्वर्ण का स्वभाव नहीं है। स्वर्ण का स्वभाव तो पीतता आदि है। उसे उसके स्वभाव में लाने के लिए स्वर्णकार सोने को तपाकर शुद्ध करता है तो सोना शुद्ध होकर चमक जाता है। और अपने वास्तविक स्वभाव को प्राप्त कर लेता है। इसीप्रकार जीव संसार में अपनी मिथ्या दुष्प्रवृत्तियों के कारण कर्मबंधन से मलीन है। उसके स्वभाविक गुण दुष्प्रवृत्तियों के कारण ढँके हुए हैं। वह चारित्ररूप धर्म को धारण करके जब निर्मल होता है तब उसके स्वभाविक गुण शुद्ध स्वर्ण के समान चमक उठते हैं। उसका अपने स्वभाव को प्राप्त कर लेना ही वास्तव में धर्म है जो सदाकाल साथ रहने वाला है। अतः धर्म का वास्तविक अर्थ वस्तु स्वभाव है। उसकी प्राप्ति के लिए चारित्ररूप धर्म को धारण किया जाता है। इसीलिए कार्तिकेयानुप्रेक्षा में धर्म के लक्षणों का संग्रह करते हुए बहुत ही सारगम्भित गाथा लिखी है।

धर्मो वत्थुसहावो खमादिभावा य दसविहो धर्मो ।

रथणत्तयं च धर्मो जीवाणं रक्खणं धर्मो ॥

अर्थात् वस्तु का स्वभाव धर्म है, उत्तम क्षमादि रूप भाव दस धर्म हैं, रलत्रय

धर्म हैं, जीवों की रक्षा करना धर्म है।

जैनाचार्यों के अनुसार ये सभी परिभाषायें धर्म की हैं। मैं कुछ परिभाषायें अन्य धर्मों के अनुसार बताऊँगा। वैदिक साहित्य में अथर्ववेद के अनुसार धार्मिक क्रिया संस्कार से अर्जित गुण धर्म है।

उपनिषद में धर्म की तीन शाखायें मानी हैं। दान, तपस्या, ब्रह्मचर्य। तत्रवार्तिक के अनुसार वर्ण और आश्रमों के धर्म की शिक्षा देना है। मीमांसा सूत्र में वेदों के निर्विष्ट अनुशासन में चलना ही धर्म है। वैशेषिक सूत्रकारों ने उसे ही धर्म कहा है जिससे अभ्युदय और निश्रेयस सुख की प्राप्ति हो।

महाभारत के अनुशासन पर्व में अहिंसा को परम धर्म कहा है। मनुस्मृति में आचरण (चारित्र) को धर्म कहा है। इस प्रकार सभी संप्रदायों ने धर्म को स्वीकार किया है और सभी धर्मों का निष्कर्ष भी एक ही है भले ही शब्दों में अंतर हो लेकिन लक्ष्य, उद्देश्य सभी का एक ही है।

जैनधर्म के उपदेष्टा या प्रवर्तक सभी तीर्थकर संसार त्यागी, तपस्वी महात्मा थे। उन्होंने गृहस्थाश्रम को त्याग करके वर्षों पर्यंत घनघोर जंगलों में आत्मध्यान करने के पश्चात् पूर्णज्ञान/क्षायिक ज्ञान/केवलज्ञान को प्राप्त करने के बाद धर्म का उपदेश दिया। उनके द्वारा धर्म के मुख्य दो भेद प्रकाश में आते हैं। अनगार या मुनिधर्म, दूसरा सागार या श्रावक धर्म। मुनि धर्म ही उत्तर्ग धर्म माना है क्योंकि वही मोक्ष प्राप्ति का साक्षात् मार्ग है। मुनिधर्म धारण किये बिना मोक्ष की प्राप्ति होने वाली नहीं है। जो मुनिधर्म धारण करने में असमर्थ होते हैं किंतु उसमें आस्था रखते हैं वे भविष्य में मुनि बनने की भावना से श्रावक धर्म अंगीकार करते हैं। अतः श्रावक धर्म अपवाद धर्म है।

पुरुषार्थ सिद्धयुपाय से ज्ञात होता है कि साधु के पास जो भी उपदेश सुनने को आवे उसे मुनिधर्म का ही उपदेश देवे। यदि वह मुनिधर्म ग्रहण करने में असमर्थ हों तो उसे पीछे से श्रावक धर्म का उपदेश देवें।

यो यतिधर्मम् कथयन्नुपदिशति गृहस्थ धर्ममल्पमतिः।

तस्य भगवत्प्रवचने प्रदर्शितं निग्रहस्थानम्॥

अक्रमकथनेन यतः प्रोत्साहमानोऽतिदूरमपि शिष्यः।

अपदेऽपि संप्रतृप्तः प्रतारितो भवति तेन दुर्मितिना॥

जो अत्यपमति उपदेशक मुनिधर्म को न कहकर श्रावकधर्म का उपदेश देता है उसको जिनागम में दण्ड का पात्र कहा है। क्योंकि उस दुर्बुद्धि ने क्रम का भंग करके उपदेश देने से अत्यन्त उत्साहित हुआ शिष्य तुच्छ स्थान में ही संतुष्ट होकर ठगाया जाता है। अतः पहले मुनिधर्म का ही उपदेश देना चाहिए। उसके बाद श्रावक धर्म का उपदेश करना चाहिए।

आज मैं श्रावक धर्म के विषय में प्रकाश डालूँगा कि किन-2 क्रियाओं के करने से वह श्रावक कहलाता है। श्रावक किसे कहते हैं— श्रुणोति गुरुविदिभ्यो धर्म इति श्रावक जो गुरुओं से धर्म सुने उसको श्रावक कहते हैं। या जो श्रद्धावान्, विवेकवान्, क्रियावान् हो उसे श्रावक कहते हैं। इन तीनों गुणों से तात्पर्य जो सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र से युक्त है वह श्रावक है। ये गुण किसमें आ सकते हैं? जिनमें 14 गुण हो वही श्रद्धावान् (सम्यक्दर्शन) विवेकवान् (सम्यक्ज्ञान) क्रियावान् (सम्यक्चारित्र) हो सकता है। इसीलिए आज मैं 14 गुणों के विषय में प्रकाश डालूँगा कि वे 14 गुण क्या हैं? और श्रावक को उन गुणों का पालन करने से क्या-2 लाभ मिलते हैं।

न्यायोपात्तधनो यजन् गुणगुणरूपं सद्गीरित्र वर्जभज

न्यन्यानुगुणं तदर्हगृहिणी स्थानालयो हीमयः।

युक्ताहार विहार आर्य समितिः प्राज्ञः कृतज्ञो वशी,

शृण्वन् धर्म विधि दयालुरघभीः सागर धर्म चरेत्॥

(1) न्यायोपात्त धन— न्याय से धन कमाना, स्वामिद्रोह, मित्र द्रोह, विश्वासधात, ठगना, चोरी करना, अन्याय अनीति, भ्रष्टाचार, पापाचार, शोषण आदि निंदित उपायों से धनोपार्जन रहित तथा अपने-2 वर्णों के अनुसार सदाचार, नीति, न्यायपूर्वक धन कमाना न्यायोपात्त धन कहलाता है। जो पुरुष न्यायपूर्वक धनोपार्जन करता है वही गृहस्थ धर्म धारण करने योग्य है क्योंकि गृहस्थों की मनोवृत्ति प्रायः धनोपार्जन की रहती है। इसीलिए धनेच्युक मानव न्याय अन्याय विचार न करके धनोपार्जन करते हैं। न्यायोपार्जन से किया हुआ धन ही इस लोक और पर लोक में सुख देने वाला है।

सर्वत्र शुचयो धीराः सुकर्मबलगर्विताः।

स्वकर्मनिहितात्मानः पापाः सर्वत्र शंकिताः॥

जो पुरुष न्याय और उत्तम कर्मों के बल से गर्वित हैं वे पुरुष सब जगह प्रत्येक स्थिति में तथा प्रत्येक कार्य में धीर तथा पवित्र रहते हैं। उन्हें कहीं पर भी किसी प्रकार का भय नहीं होता है। परंतु जिन्होंने निंद्य तथा नीच कर्मों से अपनी आत्मा को अपवित्र किया है वे सब शंकित तथा भयभीत हैं।

अन्यायोपार्जित वित्तं दश वर्षाणि तिष्ठति ।

प्राप्तेत्वेकादशे वर्षे समूलं च विनश्यति ॥(9)॥

यति न्यायप्रवृत्तस्य तिर्यचोऽपि सहायतां

अपन्यानं तु गच्छन्तं सोदरोऽपि विमुच्यति ॥(10)॥

अन्यायपूर्वक उपार्जन किया हुआ धन अधिक से अधिक दस वर्ष तक रह सकता है और ग्यारहवाँ वर्ष लगने पर मूल सहित नष्ट हो जाता है। न्यायमार्ग पर चलने वाले पुरुषों को तिर्यच भी सहायता करते हैं और अन्यायपूर्वक प्रवृत्ति करने वालों का साथ अपना सगा भाई भी छोड़ देता है दूसरे की तो बात ही क्या है इसलिए न्यायपूर्वक धनोपार्जन करना चाहिए। परंतु वर्तमान में प्रायः दिखाई देता है कि अनेक लोग अनैतिक व्यापार, हिंसात्मक व्यापार, निषिद्ध व्यापार आदि करके धन कमाते हैं और उससे दानादि करके धर्म करना चाहते हैं जैसे कुछ व्यक्ति स्वं तो शराब नहीं पीते किन्तु शराब की फैकिट्रियाँ, दुकाने चलाते हैं कुछ व्यक्ति स्वं तो बीड़ी नहीं पीते परंतु बीड़ी की फैकट्री में बीड़ी बनाते हैं व दुकान पर बेचते हैं कुछ व्यक्ति खुद तो मांस नहीं खाते हैं किंतु डालडा में चर्बी मिलाकर दूसरों को खिलाते हैं। कुछ व्यक्ति स्वयं चर्म निर्मित वस्तुओं का प्रयोग नहीं करते परंतु चर्म की विभिन्न सामग्री यथा—जूते, चप्पल, बैल्ट, सूटकेस, मनीबेग आदि निर्माण करके विक्रय करते हैं वे सोचते हैं कि हम तो स्वयं नहीं खाते, प्रयोग में नहीं लाते हम तो केवल धन कमाने के लिए व्यापार रूप में प्रयोग में लाते हैं इसमें हमारा क्या दोष है? परंतु उन्हें जान लेना चाहिए कि केवल पाप कृतरूप में नहीं होता है परंतु पाप मनसा, वचसा, कर्मणा एवं कृत कारित, अनुमोदना से भी होता है। उनकी सोच ऐसी है कि हम विष पीते नहीं, पिलाते हैं तो क्या यह दोषकारक है? परन्तु विवेक से विचार करने पर सिद्ध होता है कि विष पीने से तो स्वयं की एक ही की हत्या होती है किंतु विष पिलाने से अनेक व्यक्तियों की हत्या होती है। उसी प्रकार मांस खाने से बीड़ी, तम्बाकु आदि नशीली वस्तुओं

का सेवन करने से तो स्वयं पाप कमाता है परंतु इसके उत्पादन एवं विक्रय करने से तो स्वयं भी पाप कमाता है एवं दूसरों से भी पाप करवाता है, हिंसा करवाता है। इन हिंसात्मक व्यापारों से हिंसा के साथ—२ पर्यावरण भी दूषित हो जाता है। विश्व में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से हिंसा व अत्याचार को प्रोत्साहन मिलता है इसलिए उपर्युक्त निषिद्ध व्यापार जो करता है वह कभी धार्मिक नहीं हो सकता।

शरीर निर्वाह के लिए धन ही आवश्यकता होने के कारण धन बहुत कुछ होते हुए भी धन सब कुछ नहीं है। यह मनुष्य जन्म विश्व में अति दुर्लभ है। अनंत काल तिर्यच आदि गति में परिभ्रमण के बाद मनुष्य जन्म लेता है इस जन्म में ही मनुष्य धर्म करके मोक्ष प्राप्त कर सकता है तथापि मोही, लोभी व्यक्ति इन सब की परवाह नहीं करके केवल धन के पीछे दिवालियाँ होकर भागता रहता है। उसके जीवन में अमूल्य क्षण केवल नश्वर जड़ वस्तुके संग्रह में ही नष्ट हो जाते हैं। समय का समूह ही जीवन है। ज्यों एक समय नष्ट हो गया उसको सम्पूर्ण विश्व की सम्पत्ति देकर भी पुनः प्राप्त नहीं कर सकते हैं। तथापि ऐसे मूल्यवान समय को भी नश्वर सम्पत्ति के पीछे खो देता है। मैंने विभिन्न क्षेत्रों के अनेकों व्यक्तियों को देखा है जो धन के पीछे दिवालियाँ होते हैं कि वे अपना पारिवारिक—कर्तव्य, सामाजिक—उत्तरदायित्व, धार्मिक नीति, नियम, सदाचार को लांघ जाते हैं। उनके लिए धन ही माता—पिता, गुरु, धर्मनीति, नियम, सदाचार है, जहाँ से उन्हें धन मिला वहाँ उनका मोक्षमार्ग है। इतना ही नहीं कुछ लोग अपनी संपूर्ण सीमाओं को लांघ देते हैं। जब वे नैतिक स्थल पर काम करने वालों की ओर धर्म के लिए तन, मन, धन समय लगाने वालों को मूर्ख गँवार, अयोग्य नालायक मानते हैं। इतना ही नहीं इनकी निंदा करते हैं विरोध करते हैं उनकी हँसी उड़ाते हैं। वे धन को ही सर्वस्व मानते हैं। जो येन—केन प्रकार से शोषण या काला बाजारी करके भी धन कमाते हैं, उन्हें वे महान् आदरणीय श्रेष्ठ मानते हैं। ऐसे धन लोलुपी व्यक्तियों के अभिप्राय के बारे में भर्तुहरि ने कहा भी है—

जातिर्यातु रसातलं गुणं गणस्तत्राप्यधो गच्छत,

शीलं शैलं तटात्पतवभिजनः सदहृयता वह्निना ।

शौर्यं वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्योऽस्तु न केवलं,

येनै केन बिनागुणास्तृणलवप्राथः समस्ता इमे ॥(39)॥

जाति भले ही रसातल को चली जावे, गुणवान भले उससे भी नीचे चले जाए,

सदाचार पर्वत से गिरकर भले ही चकनाचूर हो जाए, परिवार के लोग अग्नि से भले ही भस्म हो जाये, शत्रुरूपी शूरता पर भले ही वज्र गिर जाये इस तरह भले ही सर्वनाश हो जाये पर हमें तो केवल एक धन से ही संबंध है। वह हमारा सुरक्षित रह जाय, जिसके बिना सभी गुण तृणवत् हैं।

**तानोन्द्रियाण्याविक लानि तदेव नाम,
सा बुद्धिर प्रतिहतावचनं तदैव।**

अर्थोच्यणा विरद्धितः पुरुषः स एव।

त्वन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ॥(40)॥

वे ही सब इनिद्रियाँ हैं, वही नाम है, अकुंठित वही बुद्धि है, पहले जैसी वही वाणी है, सब कुछ वही है परन्तु पुरुष जब धन की गर्मी से रहित हो जाता है तब वह क्षण मात्र में और का और ही हो जाता है।

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः, स पठङ्गतः स श्रुतवाग्नुणज्ञः ।

स एव वक्ता स च दर्शनीयः, सर्वे गुण काञ्चन माश्रयन्ते ॥(41)॥

जिसके पास धन है वही कुलीन हैं, वही पण्डित है, वही विद्वान् और गुणी है, वही वक्ता और दर्शनीय है। तात्पर्य यह है कि सभी गुण धन में रहा करते हैं। जब इतने गुण धन में रहा करते हैं तो धन को निन्दनीय क्यों कहा है? पात्रदान, देवपूजा आदि क्रियायें पुण्य का कारण हुआ करती है और ये क्रियायें बिना धन के सम्भव नहीं है इसीलिए पुण्य के साधन स्वरूप धन निन्दनीय क्यों है? इसीलिए धन प्रशस्त है और किसी भी उपाय से धनोपार्जन करके दान आदि देकर पुण्य कमाना श्रेष्ठकर है लेकिन आचार्य श्री इस शंका का समाधान करते हुए कहते हैं कि-

जो निर्धन व्यक्ति सेवा, कृषि आदि कर्म से धन संचय करके पात्रदान, देवपूजा, त्याग आदि करके अपूर्व पुण्य प्राप्त करना चाहता है वह स्नान कर लूँगा इस प्रकार विचार करके स्व शरीर को कीचड़ से युक्त करता है। यथा—कोई निर्मल शरीर वाला सोचता है कि मैं बाद में शरीर को स्नानादि से स्वच्छ कर लूँगा। इस प्रकार से स्वच्छ शरीर को कीचड़ से मल से लिप्त कर लेता है उसी प्रकार जो अविवेकी, असमीक्षाकारी पाप से धनोपार्जन करके पात्रदानादि पुण्य से पाप को नष्ट कर दूँगा ऐसा मानकर धनार्जन करता है वह भी अयोग्य है क्योंकि शुद्ध वृत्ति से किसी

के भी धनार्जन सम्भव नहीं है। आत्मानुशासन में कहा भी है— सज्जनों की सम्पत्ति भी शुद्ध धन से बनती नहीं है जैसा कि स्वच्छ पानी से कदापि नदियाँ परिपूर्ण नहीं होती है। संस्कृत टीकाकार ने यह भी सूचित किया है कि जिस प्रकार कुछ चक्रवर्ती आदि को बिना यत्न से पूर्वोपार्जित पुण्य से सम्पत्ति की प्राप्ति हो जाती है और वह उस सम्पत्ति से श्रेय मार्ग के लिये पात्रदानादि करता है तो विशेष दोषकारी नहीं है।

यादृशि भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी ।

अर्थात् जिस प्रकार भावना होती है, उसी प्रकार सिद्धि होती है, क्योंकि “भावना भवनशिनी, भावना भववर्द्धनी” अर्थात् पवित्र भावना से भव का नाश होता है, तो दूषित भावना से भव की वृद्धि होती है। इसलिए पूजक को, धार्मिक व्यक्ति को हर समय हर तरह से भाव को सम्भालना चाहिए व परिमार्जित करना चाहिए। पूजा, अर्चना, दान, तीर्थयात्रा, स्वाध्याय आदि का परम लक्ष्य आत्मा को निर्मल बनाना है और मोक्ष प्राप्त करना है, उसका आनुसंगिक फल पुण्य उपार्जन है, जिसका फल संसार की विभूति है। परंतु जो सम्पत्ति, पुत्र प्राप्ति, केश में जययुक्त होना, शत्रु को कष्ट पहुँचाना आदि क्षुद्र लौकिक सिद्धि के लिये तथा परलोक में स्वर्ग प्राप्ति रूप उद्देश्य क्षुद्र होने के कारण यथार्थ नहीं है। निदान करने से फल की उपलब्धि भी कम हो जाती है इसलिए प्रत्येक धार्मिक कार्य पवित्र उद्देश्य से पवित्र साधनों से ही सम्पादन होना चाहिए। भोग, धन, स्त्री, पुत्र आदि की कामना से धर्म करना जैसे भीख माँगना है। धर्म भक्त को भगवान् बनाता है, परंतु भक्त को भिखारी नहीं बनाता है। धर्म के नाम पर भीख माँगना भी भिखारीपन है इसलिए त्यजनीय है। कवि ने कहा भी है—

माँगन मरण समान है, मत माँगों कोई भीख ।

माँगन से मरना भला, यह सतगुरन की सीख ।

बिन माँगे मोती मिले, माँगे मिले न भीख ।

बिन माँगे सो दूध बराबर, माँगे मिले सो पानी ।

कबीर वह है खून बराबर, जामे खींचा तानी ।

जो दान करने के लिए भी अन्याय से धन उपार्जन करता है वह भी अधार्मिक, अज्ञानी है, क्योंकि उसका साधन अपवित्र है, इतना ही नहीं वह उस धन से वस्तुतः

धर्म नहीं चाहता है, प्रसिद्धि, कीर्ति चाहता है, क्योंकि वास्तविक धार्मिक व्यक्ति धर्म का स्वरूप, उसका साधन एवं उसका उद्देश्य जानता है।

(2) गुणगुरुनृयजन्— गुणों की, गुरुओं की तथा जो गुणों में श्रेष्ठ, ज्येष्ठ, वरिष्ठ हैं उनकी पूजा करना।

लोकापवाद भीरुत्वं दीनाभ्युद्धरणादरः ॥

कृतज्ञता सुदाक्षिण्यं सदाचारं प्रकीर्तिः ॥

लोकापवाद से भयभीत होना, दीनों के उद्धार करने में आदर रखना, कृतज्ञता, उदारता, परोपकार को सदाचार कहते हैं। सज्जनता, उदारता, दानशीलता, गंभीरता, उत्कृष्ट भाषण शीलता आदि से अपना तथा पर का उपकार करना गुण कहलाता है। और उन गुणों से युक्त पुरुषों को गुणगुरु कहा जाता है। उन गुणों में श्रेष्ठ पुरुषों का बहुमान, प्रशंसा, नाना प्रकार की सहायता से सत्कार सेवा आदि करना गुणगुरु पूजा कहलाती है। तथा माता-पिता, आचार्यदि की त्रिकाल वंदना करना, नमस्कार करना, मन, वचन, काय से उनकी सेवा, वैद्यावृत्ति करना गुरुपूजा कहलाती है।

माता-पिता की सेवा करना भी गुरुपूजा कहलाती है— क्योंकि आचार्यों ने कहा है—

यन्मातपितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणां ।

न तस्य निष्कृति शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ॥

मनुष्यों की उत्पत्ति के समय जो उनके माता पिता दुःख को सहन करके उनका उपकार करते हैं, उसका बदला सो वर्षों में भी नहीं चुकाया जा सकता। इसीलिए माता-पिता की सेवा करना भी व्यवाहर में गुरु पूजा कहलाती है। ज्ञान संयमादि गुणों से शोभायमान पूज्य गुरुओं की सेवा वैद्यावृत्ति करना, उनके आने पर आसन से उठना आदि उपचार विनय के द्वारा गुरु पूजा कहलाती है। गुण, गुरु तथा गुणगुरुओं की पूजा करना स्वकीय गुणों के विकास के लिए निमित्त कारण है। क्योंकि जो जिस गुणों का इच्छुक होता है वही उन गुणों की वा गुणवानों की संगति की उपासना करता है। इसीलिए जो सम्यग्दर्शनादि गुणों में तथा गुणवानों में आदर भाव नहीं रखता है वह अपने गुणों में विकास नहीं कर पाता है।

(3) उत्तम वाणी — वचन एक विषाक्त वाण व मीठी गोली दोनों ही है। वचन से संसार को वशीकरण किया जा सकता है या समस्त संसार को तहस नहस

किया जा सकता है। इसीलिए प्रशंसनीय वचन बोलना भी श्रावकधर्म पालन करने में कारण है।

**यदिच्छसि वशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा,
परापवादसर्वे भ्यो गां चरन्ती निवारय ।
परपरिभ वपरिवादादात्मोकषच्च बध्यते कर्म,
नीचैगौत्रं प्रतिभवमनेक कोटिदुर्मोचम् ॥**

जो तुम एक ही उपाय से संपूर्ण संसार को अपने वश में करना चाहते हो तो दूसरों की निंदारूपी सत्य को चरने वाली अपनी वाणीरूपी गाय को रोको अर्थात् दूसरों की निंदा मत करो। दूसरों का तिरस्कार तथा उसकी निंदा करने से, अपनी प्रशंसा करने से प्रत्येक भव में नीचगोत्र कर्म का बंध होता है, जो नीच गोत्र अनेक भव में भी नहीं छूट सकता।

(4) अन्योन्यानुगण विवर्ग भजन— परस्पर विरोधरहित तीनों वर्ग का सेवन करना। धर्म, अर्थ और काम इन तीनों को त्रिवर्ग कहते हैं। इन तीनों का परस्पर विरोध रहित सेवन करना चाहिये।

धर्म :— आत्मा के सम्यग्दर्शनादि गुणों को धर्म कहते हैं।

अर्थ :— जिसके द्वारा हमें लौकिक कार्यों की सिद्धि होती है उसको अर्थ कहते हैं। अथवा बुद्धि, क्षमता, जमीन को भी अर्थोत्पादक होने से अर्थ कहते हैं।

काम :— पंचेन्द्रियों के विषय को काम कहते हैं अथवा जिससे पाँचों इन्द्रियों की तृप्ति हो उसको काम कहते हैं। इसमें काम का कारण अर्थ (धन) है। क्योंकि धन के बिना पंचेन्द्रिय सम्बन्धी भोगोपभोग सामग्री प्राप्त नहीं हो सकती है। तथा सत्यता, प्रामाणिकता के बिना धन की प्राप्ति नहीं होती है। सत्यता सदाचार से आती है। और सदाचार का नाम ही धर्म है। इसलिये प्रत्येक गृहस्थ का कर्तव्य है परस्पर विरोध रहित तीनों पुरुषार्थ को सेवन करे क्योंकि जो मनुष्य अपने धर्म की रक्षा करते हुए अर्थोपार्जन करते हैं, उनकी प्रवृत्ति धर्म की रक्षा करने से अधार्मिक तथा अर्थ की रक्षा करते हुए विषय सेवन करने से दारिद्र आदि दोषों से आक्रान्त नहीं होती है इसलिये परस्पर में अधिरोध भाव से त्रिवर्ग को सेवन करने वाले पुरुष ही श्रावक धर्म के पालन करने के योग्य कहे गये हैं। और शास्त्रों में भी आचार्यों ने कहा है—

यस्य त्रिवर्गशुद्ध्यानि दिनान्वयायान्ति यांति च।
स लोहकार भरत्रेव श्वसन्नपि न जीवति ॥

परस्पर में अविरोध भाव से धर्म, अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थों के सेवन के बिना ही जिसके दिन आते हैं और जाते हैं वह पुरुष लुहार की धोकनी के समान श्वासोच्छ्वास लेता हुआ भी मरे हुए के समान है अर्थात् धर्म, अर्थ और काम के सेवन के बिना मनुष्य का जीवन पशु के समान निरर्थक है तथा उसका जीना और नहीं जीना दोनों बराबर है। मनुष्य धन से नहीं धर्म, स्वाभिमान से जीता है। परस्पर विरोध रहित त्रिवर्गों का सेवन करना ही योग्य है क्योंकि जिन पुरुषों की प्रवृत्ति इससे विपरीत है वे पुरुष सांसारिक सुख व शांति से रहित होकर हमेशा नाना प्रकार के संकलेषों से आतुर रहते हैं और उस आतुरता के कारण धर्म कर्म से विमुख होकर यथेष्ट रीति से न्याय अन्याय का विचार न करके अर्थ व काम के सेवन में प्रवृत्त होते हैं इसलिये ऐसे पुरुष धर्म के अधिकारी नहीं हैं।

(5) योग्य स्त्री – मनुष्य जीवन में तथा सृष्टि के ऊपर स्त्री का अधिक प्रभाव पड़ता है। इसलिए कुभार्या के निमित्त से अपने जीवन व संतान के कोमल हृदय पर बुरे संस्कार पड़ते हैं। जिससे आकुलित मानव शीघ्र त्रिवर्ग के सेवन की तरफ रुचि नहीं कर सकता है इसलिए त्रिवर्ग साधन में योग्य स्त्री का होना प्रधान कारण है। स्त्री को धर्म-पत्नी कहा है अर्थात् जो धर्म में साथ दे वही धर्मपत्नी होती है। सीता के प्रस्थान के समय जनक ने शिक्षा दी थी—

अभ्युत्थानमुपागते गृहपतौ तद्भाषणे नम्रता,
तत्पादार्पित दृष्टि ससनविधौ तस्योपचर्या स्वयं ॥

सुप्ते तत्र शयीत तत्प्रथमतो जह्माच्च शश्याभिति,
प्राङ्मैः पुत्रि निवेदिताः कुलवधूसिद्धान्तधर्मा इम ॥

हे पुत्री! पति के घर जाने पर उनका सत्कार करने के लिये उठकर खड़ा होना जो कुछ वो कहें उसको विनयपूर्वक सुनना, उनके आसन पर बैठ जाने पर उनके चरणों में दृष्टिरखना, स्वयं उनकी सेवा करना, उनके सोने पर सोना और उनके उठने के पहले उठना, यह सब विद्वानों ने कुलपुत्रियों का धर्म कहा है।

वरन् आजकल परिवार के संस्कार, आचार विचारों को न देखते हुए लड़की के रूप रंग, उसके सौन्दर्य को देखकर शादी करते हैं। लड़की के गुण उसके अच्छे

संस्कार, शालीनता, नम्रता को नहीं देखते हैं। आज की लड़कियाँ बड़े-छोटों का कोई फर्क नहीं समझती। लाज-शर्म बिल्कुल नहीं। बड़ों के साथ किस प्रकार का आदर भाव करना, कैसे उठना, बैठना, ओढ़ना पहनना, खाना-पीना, धर्म में रुचि रखना इन सभी संस्कारों की पूर्ण रूप से कमी होती है। आजकल यदि आदर्श परिवार गिने जाते तो 100 में से 10% घर ही मिलेंगे। टी.वी. का बहुत ही बुरा असर लड़कियों व लड़कों पर पड़ता है। वह अपने रूप रंग पर ज्यादा ध्यान रखती है। अपने उच्च विचारों पर नहीं।

(6) योग्य गृह – जिस प्रकार योग्य स्त्री त्रिवर्ग में प्रधान कारण है उसी प्रकार जिस जिस स्थान में योग्य शासक नहीं है, उदार चित्तवाले सज्जन पुरुष नहीं हैं अर्थोत्पादन के साधन नहीं हैं सद्वैद्य नहीं ज्ञान तथा संयम को बढ़ाने वाला वातावरण नहीं है ऐसे स्थान में रहने वाले व्यक्ति भी पूर्ण रूप से त्रिवर्ग को सेवन नहीं कर सकते हैं। इसलिये योग्य स्त्री के समान योग्यस्थान भी धर्म साधन के कारण हैं। तथा रहने का मकान भी धर्मसाधन में कारण है क्योंकि जिस मकान में धर्म, अर्थ, काम के सेवन करने के लिये अलग-अलग विभाग नहीं हैं योग्य पड़ोसी नहीं हो जो हमेशा ग्लानि युक्त रहता हो, स्वच्छता से रहित हो तथा जहाँ पर त्यागी व्रतियों की आहारदान की व्यवस्था, विद्वान पुरुषों का आगमन, आवास न हों ऐसा मकान भी त्रिवर्ग साधनों में उपर्युक्त नहीं है। जिस घर में साधुओं का सत्कार नहीं होता है वह घर शमशान के बराबर होता है।

(7) हीमयः : स्त्रियों के समान पुरुषों का भी लज्जा एक भूषण है। क्योंकि लज्जाशील पुरुष ही स्वाभिमान की रक्षा के लिये समर्थ होता है तथा वही मानव अपकीर्ति के भय से असदाचार में प्रवृत्ति नहीं करता है। लज्जाशील पुरुष ही कितनी ही आपत्ति आने पर भी अपने स्वाभिमान पर धक्का नहीं आने देता है। और अपनी ली हुई प्रतिज्ञा को नहीं छोड़ता है। वह लोक भय के कारण हमेशा असत्कर्मों से दूर रहता है। उसकी प्रवृत्ति हमेशा कोमल, तथा व्यवहार अत्यन्त शोभनीय होता है। परन्तु जिनके परिणामों में लज्जा नहीं है, उसको लोकापवाद का भय नहीं है वह भंडवचन बोलने वाला होता है, अपनी ली हुई प्रतिज्ञा पर दृढ़ नहीं होता है। इसलिये लज्जाशील होना भी धर्मसाधन में एक कारण है।

(8) युक्ताहार विहार – शास्त्रविहित आहार-विहार करने वाला सामान्यतया आहार का अर्थ भोजन और विहार का अर्थ गमनागमन करना है। परन्तु युक्त

(योग्य) शब्द का विश्लेषण लगा देने से धर्म शास्त्र तथा वैद्यक शास्त्र कथित आहार विहार करने वाला होना चाहिये। क्योंकि जो धर्मशास्त्र विहित आहार को छोड़कर आहार करने वालों के भक्ष्याभक्ष्य का विचार नहीं होता है। इसलिये जो पदार्थ अभक्ष्य है, शरीर को बाधा पहुँचाने वाला है, मदकार है, अविचारी निन्दनीय पुरुषों के द्वारा बनाया हुआ है, उसका सेवन नहीं करना चाहिये। क्योंकि यद्वा-तद्वा आहार करने से मन दूषित होता है। कहा भी है—

यादृशं भक्षयेदन्नं तादृशी जायते मतिः।

दीपोऽपि भक्षयते ध्वान्तं कज्जलं च प्रसूयते॥

“जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन। जैसा पीवे पानी वैसी होवे वाणी” प्राणी जैसा अन्न खाता है वैसा मन होता है जैसे दीपक अंधकार दूर करता है (खाता है) तो उससे कज्जल उत्पन्न होता है। अयोग्य आहार करने से स्वास्थ्य का घात होता है तथा शारीरिक शक्ति और धर्म प्रवृत्ति का नाश होकर चित की प्रवृत्ति अनुचित विषयों में लग जाती है। क्योंकि जिह्वालोलुपी मानव विषय लम्पटी बन जाता है। जिस प्रकार योग्य आहार श्रावक धर्म में प्रधान कारण है वैसे ही विहार है। क्योंकि यद्वा-तद्वा निर्लज्ज होकर इधर-उधर जो विचरण किया करते हैं वे अपने कर्तव्य से च्युत हो जाते हैं। उनसे अपने कर्तव्य का पालन नहीं होता है।

(9) संत संगति – जिनकी संगति से सम्यक्त्वादि गुणों का विकास हो, जगत में अपनी प्रशंसा हो तथा आत्म प्रतिष्ठा बढ़ानी हो ऐसे सज्जन सदाचारी पुरुषों की संगति को आर्य संगति कहते हैं। सज्जन सदाचारी पुरुषों की संगति करने वाला तथा उनके सहवास में रहने वाला पुरुष ही श्रावक धर्म का पालन कर सकता है अच्छी संगति से रत्नाकर डाकू भी वाल्मीकि बन गया।

यदि सत्यंगतिरतो भविष्यसि भविष्यसि।

अथ सज्जानगोष्ठीषु पतिष्यसि पतिष्यसि।

अर्थ— यदि तुम सज्जन पुरुषों के सहवास में रहोगे, उनकी संगति में लीन होवोगे तो अवश्य ही ज्ञान की गोष्ठी में पड़ोगे अर्थात् उत्तम ज्ञान को प्राप्त करोगे। इसके विपरीत दुराचारी जुआरी धूर्त भंड वचन बोलने वाले भाट आदि पुरुषों की संगति से सदाचार रूप श्रावक धर्म का नाश होता है।

(10) प्राज्ञ – ऊहापोहात्मक मतिज्ञान के अतिशय को धारण करने वाले को

प्राज्ञ कहते हैं सो ही कहा है—

इदं फलमियं क्रिया करणमेतदेषक्रमो,

व्ययोऽयमनुष्डङ्गं फलमिदं दशैषा मम।

अयं शुहृदयं द्विष्टप्रयतदेशकालाविमा-

विति प्रतिवितर्कयन् प्रयतते बुधोनेतरः।

यह इस कार्य का फल है यह इसकी क्रिया है, यह इसका साधन है, यह क्रम है, इतना इससे खर्च है, यह इस कार्य से होने वाला लाभ है, यह मेरी अवस्था है, यह मेरा मित्र है, यह मेरा शत्रु है और यह देश है, क्षेत्र है, यह काल है, इस प्रकार का विचार करके कार्य में प्रवृत्ति विद्वान ही करते हैं, मुर्ख लोग नहीं कर सकते। अर्थात् हेयोपदेय का विचार ज्ञानी को ही होता है।

प्रत्यं प्रत्यवेक्षेत नरश्चरितचमात्मनः।

किन्तु मे पशुभिस्तुल्यं किन्तु सत्पुरुषैरिति॥

मनुष्यों को हमेशा अपने आचरित कार्यों का अवलोकन करना चाहिये और फिर विचार करना चाहिये कि आज मैंने कौन-कौन से कार्य तो पशु के समान किये और कौन-कौन से कार्य मनुष्य के समान किये। इस प्रकार हिताहित के विचार करने वाले को प्राज्ञः कहते हैं।

(11) कृतज्ञ – जो दूसरों के द्वारा किये हुए उपकार को मानता है वह कृतज्ञ है। उपकार को नहीं भूलता है वह कृतज्ञ कहलाता है। सज्जन पुरुष पहिले तो किसे से उपकार कराते नहीं और यदि कोई उपकार करते हैं तो उसका उपकार कभी भूलते नहीं है। कृतज्ञता यह महान् गुण है इससे सम्पूर्ण कार्यों की सिद्धि होती है। जगत को वश में करने के लिये अमोघ अंग है—

विधित्सुरेनं तदिहात्मवश्यं कृतज्ञतायाः समुपैहि पारं।

गुणैरुपेतोऽप्यखिलैः कृतज्ञः समस्तमुद्देजयते हि लोकं॥

यदि तुम सम्पूर्ण जगत को अपने वश में करना चाहते हो तो प्रथम कृतज्ञता की सीमा को प्राप्त हो अर्थात् कृतज्ञ बनो क्योंकि सम्पूर्ण गुणों से युक्त होने पर भी कृतज्ञी समस्त जगत को उद्देजीत करता है, पीड़ित करता है। इसलिये कृतज्ञता भी श्रावक धर्म में प्रधान गुण है। लेकिन आज सम्पूर्ण जगत स्वार्थी बन गया है। परिवार समाज राष्ट्र सभी जगह स्वार्थ ही स्वार्थ है।

(12) वशी – जो इष्ट पदार्थों में आसक्ति न करता हुआ और विरुद्ध पदार्थों में प्रवृत्ति न करता हुआ बाह्य में स्पर्शनादि पंचेन्द्रिय विषयों के विकार का और अंतरंग काम, क्रोध, मद, मोह, लोभादि शत्रुओं का निरोध करते हैं अर्थात् उन पर विजय प्राप्त करते हैं उनको ही वशी कहते हैं। जो बाह्य में पंचेन्द्रिय के विषयों को रोकने के साथ में काम क्रोधादि अंतरंग विकारों को भी रोकता है वही वस्तुतः वशी कहलाता है। पंचेन्द्रिय सम्बन्धी विषय निग्रह तथा काम क्रोधादिक का निग्रह करने वाला ही श्रावक धर्म धारण कर सकता है। इनके वशीभूत होने वाला श्रावक धर्म का पालन नहीं कर सकता है। इसलिये वशी (इन्द्रियों को वश में करना) होना भी श्रावक का गुण है।

(13) धर्मविधि को सुनने वाला – धर्म का कारण धर्मविधि है अर्थात् मोक्ष और स्वर्गादि सुख के कारण को धर्मविधि कहते हैं और युक्ति आगम से सिद्ध धर्म के स्वरूपको जो प्रतिदिन सुनता है उसको धर्म की विधि को सुनने वाला कहते हैं। धर्म की विधि का सुनने का अधिकारी कौन है? उसका वर्णन आत्मानुशासन में लिखा है।

भव्यः किं कुशलं मनेति विमृशन्दुःखाद्भूतं मीतवान्।

सौख्येषी श्रवणादिबुद्धिविभवः श्रुत्वा विचार्य स्फुटम्।

धर्म कार्यकर दयागुणमयं, युक्त्यागमाभ्यां स्थितं

गृहन्धकर्मकथा शअरुतावधिकृतः शास्त्रों निरस्ताग्रहः॥

जो भव्य हो, कौन से कार्य में मेरा कल्याण होगा, इस बात का अर्थात् अपने हित का विचार करने वाला हो, श्रोतापने के गुणों से युक्त हो, अर्थात् शास्त्रों के सुनने आदि में उत्तम बुद्धि रखने वाला हो, मुक्ति तथा आगम से सिद्ध और सुख को करने वाले ऐसे दया गुणमयी धर्म को सुन करके तथा अच्छी तरह से विचार करके उसको ग्रहण करने वाला हो और जो दुराग्रह से रहित हो वही शिष्य, पुरुष ही धर्मकथा सुनने का अधिकारी माना गया है।

(14) दयालु – दुःखी प्राणियों के दुःखनाश करने की इच्छा को दया कहते हैं। और जिनके परिणामों में दया हो अर्थात् जो दया युक्त हो, उसको दयालु कहते हैं। ‘धर्मस्य मूलं दया’ ऐसा शास्त्र वचन है। इसलिये दया को अवश्य स्वीकार करना चाहिये सो कहा है

प्राणायथाऽत्मनोऽभीष्टा भूतानामपि ते तथा।

आत्मौपम्येन भूतानां दयां कुर्वत मानवः॥

“दया धर्म का मूल है पाप मूल अभिमान,
तुलसी दया न छोड़िए जब तक घट में प्राण॥”

जिस प्रकार तुमको अपना प्राण प्रिय है उसी प्रकार सम्पूर्ण जीवों को भी अपने अपने प्राण प्रिय है, इसलिये मनुष्यों को अपने समान ही सम्पूर्ण प्राणियों पर दया करनी चाहिये।

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवाधार्यताम्।

आत्मनः प्रतिकूलानिपरेषां न समाचरेत्॥

धर्म के सार को सुनो तथा सुनकर उन पर विचार करो। क्योंकि सम्पूर्ण धर्म का सार यही है कि जो कार्य अपने प्रतिकूल है उन कार्यों को दूसरों के प्रति मत करो अर्थात् दूसरों के द्वारा किये गये जिन कार्यों से तुमको दुःख होता है उन कार्यों को तुम दूसरों के प्रति भी मत करो।

अवृत्तिव्याधिशोकार्तनिनुवर्तेत् शक्तितः।

आत्मवत्सततं पश्येदपि कीटपिपीलिकाः॥

अर्थ— जो आजीविका के अभाव से रोग तथा शोकादिक से दुखी हैं ऐसे प्राणियों की सदैव अपनी शक्ति के अनुसार सहायता करनी चाहिये। और छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े चींटी आदि सम्पूर्ण जीवों को भी सदैव अपने समान ही देखना चाहिये। इसलिये दयालु होना भी श्रावक धर्म में एक मुख्य गुण है।

(15) अघभी – दुष्ट अदुष्ट (प्रत्यक्ष और परोक्ष) अपाय स्वरूप फल देने वाले चोरी आदि मदिरा पानादि पाप कर्म से भयभीत होने वाले को पापभीरु कहते हैं। अर्थात् अघ=पाप से डरने वाला अघभी कहलाता है। इन गुणों को धारण करने वाला श्रावक धर्मको पालन कर सकता है।

इस प्रकार श्रावक के कर्तव्यों का विशद समीक्षात्मक विश्लेषण करते हुए आचार्यश्री ने अंतिम शब्दों में कहा कि हम सभी को दया, करुणा, विवेक, क्षमा, सहिष्णुता, परोपकार, संवेदना आदि सद्गुणों को जागृत करना चाहिए। जागृत अवस्था ही विकास का मूल स्रोत है। एवं जीवन शैली को समृद्ध, सम्पन्न बनाने

का अमोघ सशक्त उपाय है। जिस प्रकार पुष्ट अपनी सुगंधी चारों तरफ बिखेरते हैं उसी प्रकार जो मनुष्य उपरोक्त गुणों को अपना लेते हैं वह दुनियाँ के लिए सुंदर-मीठी सुगंधी फैला सकते हैं। उत्कृष्ट / श्रेष्ठ / ज्येष्ठ / पवित्र / निर्मल भावनाओं वाला व्यक्ति ही दूसरों के लिए आदर्श बन सकता है।

भारत के ऋषि, मुनि, साधु-संत, मनीषी-वैज्ञानिकों ने मानव जीवनको सुखी, समृद्धिशाली बनाने के लिए स्वयं को मर्यादित किया। जीवन का पूर्ण विकास स्वयं से ही होता है इसीलिए इन बताये गुणों का सभी अपने जीवन में पालन करें एवं सुख/समृद्ध सम्पन्न बनायें।



महान् पुरुषों का आचरण करने से ही स्वयं का जीवन महान् बनता है

धर्म-दर्शन-विज्ञान शोध संस्थान के तत्त्वावधान में आचार्यरत्न श्री कनकनंदीजी गुरुदेव ने छह दिवसीय 'समर्पित कार्यकर्ता प्रशिक्षण शिविर' के अंतर्गत धर्मसभा को संबोधित करते हुए कहा कि एक दिन एक ग्रीक-दार्शनिक दिन में, हाथ में एक दीपक लेकर प्रसिद्ध एथेन्स नगर में कुछ गौर पूर्वक ढूँढ़ रहे थे। ढूँढ़ते-2 अनेक समय व्यतीत हो गया तथा अनेक व्यक्तियों के साथ उनकी भेंट भी हो गयी। उनको सूर्य के प्रकाश में हाथ में दीपक लेकर कुछ ढूँढ़ते हुए परिस्थिति में देखकर एक व्यक्ति ने उस दार्शनिक से पूछा आप दिन में दीपक लेकर क्या ढूँढ़ रहे हैं? दार्शनिक ने कहा— मैं मनुष्य ढूँढ़ रहा हूँ। जिज्ञासु व्यक्ति ने पुनः पूछा— क्या एथेंस जैसी महन नगरी में, जहाँ प्रत्येक समय हजारों मनुष्य इधर-उधर गुजरते हैं वहाँ आपको दिन में मनुष्य दिखाई नहीं देते हैं? इतना ही नहीं आप दिन में दीपक लेकर मनुष्य ढूँढ़ रहे हैं? तब वह दार्शनिक बोला कि आप स्वयं के बारे में बतायें। मैं मांस नहीं खाता हूँ किंतु कभी-2 शराब जरुर पी लेता हूँ। तब वह दार्शनिक आगे बोला कि आप भी मनुष्य नहीं है ऐसे कहते हुए वह दार्शनिक आगे ढूँढ़ता हुआ निकल गया। कुछ समय बाद कुछ दूरी पर अन्य एक व्यक्ति ने पूर्वोक्त व्यक्ति के समान प्रश्न किया तब दार्शनिक ने पूर्वोक्त प्रकार प्रश्न किया। प्रत्युत्तर में वह व्यक्ति बोला कि— मैं कभी-2 मांस खा लेता हूँ।

तब वह दार्शनिक बोला— आप भी मनुष्य नहीं है, ऐसा कहकर आगे बढ़ गया। इसी प्रकार अनेक व्यक्तियों के साथ भेंट हुई तो कोई परस्ती सेवन करता था, कोई वेश्या सेवन करता था, कोई जुआँ खेलता था और कोई शिकार खेलता था। प्रत्येक व्यक्ति के उत्तर सुनकर वह दार्शनिक कहता था कि आप लोग भी मनुष्य नहीं हो।

सर्वत्र विदित है कि भारत के सदृश ग्रीक भी एक सभ्य, सुसंस्कृत उन्नत देश था, परंतु ग्रीक के लोग आगे जाकर दुर्व्यसनों से ग्रसित हो गये थे, जिसके कारण ग्रीक की सभ्यता, संस्कृति ध्वंस-विध्वंस हो रही थी। उस अवस्था को देखकर अनेक हितचिंतक व्यक्तियों के मन में जन-गण के कल्याण के लिये विभिन्न भावनायें जाग्रत हो रही थीं तथा वे अपनी-2 पद्धति से सुधार करने में तत्पर थे। उनमें से एक महान् दार्शनिक ‘हीरोक्लेटिस’ थे। वे ही जनता को सुधारने के लिये एवं गलती को बताने के लिये दिन में हाथ में दीपक लेकर घूमते थे। जो व्यक्ति दुर्व्यसन में ग्रसित थे उनको वे मनुष्य रूप से स्वीकार नहीं करते थे एवं उसको बताते थे कि तुम इस दुर्व्यसन के कारण मनुष्य नहीं हो, पशु हो, ठीक ही है।

हिताहित जाने नहीं मानव बिना विवेक।

सींग पूँछ बिन बैल है भगिनी भाभिनी एक ॥

जो विवेक, सदाचार, शील, संयम, व्रत, नियम, दया, क्षमा, करुणा, सहिष्णुता, वत्सल्यता, परोपकारिता, संवेदना आदि सद्गुणों से रहित है वह मनुष्य नहीं बल्कि मनुष्याकार में वह पशु से भी निकृष्ट, पतित है।

काल का स्वभाव परिणमनशील है। जिस प्रकार चक्र में आरे होते हैं एक आरे के आगे बढ़ने पर पिछला आरा आगे आता है, एक आगे एक पीछे इस प्रकार क्रम से गति चक्र घूमता रहता है उसी प्रकार व्यक्ति, समाज, प्रकृति का उतार चढ़ाव है। कभी वृद्धि / विकास / उन्नति / प्रगति करते हैं तो कभी हानि / अवनति / विनाश को करते हैं। इसीलिए गीता में कहा है—

यदा-यदा ही धर्मस्य ज्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यमहम् ॥

परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दुष्कृतां ।

धर्म संरथानपनार्थाय संभवामि युगे-युगे ॥

हे भारत! धनुर्धर अर्जुन! जब-2 धर्म मंद पड़ जाता है अधर्म का जोर बढ़ता है तब-2 मैं जन्म धारण करता हूँ, साधु, सज्जन, धर्मात्माओं की रक्षा, दुष्टों

के निवारण नाश तथा धर्म का पुनरुद्धार करने के लिए मैं युगों-2 में जन्म लेता हूँ। इसी प्रकार भारत के विनाश, भ्रष्टाचार, पापाचार, अन्याय, शोषण, कुरीतियाँ आदि को रोकने हेतु संकीर्णता वैमनस्य, कलह, कूट को त्याग करके आपसी प्रेम-संगठन-एकता के सूत्र में संगठित होकर भारत को पुनः विश्वगुरु बनाना है। हमें स्वयं को इतना सशक्त व मजबूत बनाना होगा कि दूसरे लोग हमारे आभामण्डल से स्वयमेव प्रभावित हो जायें। विश्व का प्रत्येक जीव अनंत, अक्षय ज्ञान दर्शन वीर्य से संपन्न है। लेकिन यथार्थमार्ग- प्रदर्शनकारीके अभाव में यथार्थ शांति के मार्ग को भूल चुका है। परंतु जब उसको यथार्थ सुख शांति, क्रांति के पथिक का सुयोग्य मार्गदर्शन मिलता है तब उसे दिशा बोध होता है। एवं यथा शक्तिविपरीत मार्ग को त्यागकर सत्य, सुख, क्रांति के मार्ग में प्रयाण करता है। अतएव योग्य क्रांति के लिए क्रांतिकारी महामानव की आवश्यकता प्रथम, प्रधान, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ एवं सर्वोपरि है। जैन दर्शनानुसार अनादिकालीन मिथ्यादृष्टि जब तक सच्चे गुरु का उपदेश प्राप्त नहीं कर पाता है, तब तक वह सम्यक्दृष्टि नहीं हो सकता क्योंकि अनादिकालीन कर्म परतन्त्रता के कारण संसारी जीव ने सत्य स्वरूप से विमुख होकर असत्य, अधर्म, दुःख में ही रचा-पचा एवं उसका अनुभव किया है। इसीलिए उसको सत्य का परिज्ञान एवं सत्य की प्राप्ति के लिए सत्य मार्ग का परिज्ञान गुरु से ही होता है। वे गुरु, असाधारण, अलौकिक, प्रतिभा, ज्ञान, वैराग्य शक्ति से संपन्न होते हैं।

धर्म, सभ्यता, संस्कृति का उद्गम, प्रचार-प्रसार, उन्नयन क्रांति, दृढ़ीकरण महापुरुषों से ही होता है। मनुष्य समाज एवं पशु समाज दोनों समकालीन प्राचीन समाज होते हुए भी मनुष्य समाज उत्तरोत्तर सभ्यता एवं संस्कृति की उन्नति करते हुए अविराम गति से आगे बढ़ता जाता है परंतु, पशु समाज प्रारम्भिक प्राचीन काल में जिस स्थिति में था आज भी सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से उसी स्थिति में है अथवा और भी पीछे हटा है। क्योंकि मनुष्य एक चिंतनशील, प्रज्ञावान, विवेकवान, प्रगतिशील समाज है। इस मानव समाज में कुछ ऐसे अलौकिक शक्ति प्रतिभा के धारी क्रांतिकारी महापुरुष हुए हैं जिनसे मानव समाज को आगे बढ़ने के लिए दिशा, उत्साह, प्रेरणा मिली है। यदि मानव समाज में प्रगतिशील क्रान्तिकारी महान् पुरुष नहीं होते तो शायद आज भी मानव समाज पशु समाज के समकक्ष ही होता। पशु समाज में ऐसे कोई उन्नतिशील जीव नहीं होते, जिससे पशु समाज की उन्नति हो।

जिस प्रकार “न धर्मो धार्मकीर्विना” अर्थात् धर्मात्मा को छोड़कर धर्म का अस्तित्व ही नहीं है, उसी प्रकार सभ्य सांस्कृतिक मानव को छोड़कर सभ्यता एवं सांस्कृति का अस्तित्व ही नहीं है। उन्नतशील जीवन सभ्यता एवं संस्कृति के विग्रह स्वरूप महामानव जो आहार-विहार, आचार-विचार करते हैं वही सभ्यता एवम् संस्कृति है। मानव समाज विशेषतः अनुकरण प्रिय होने से वे महापुरुषों का अनुकरण करके उनके पदचिह्नों पर यथाशक्ति कदम 2 रखकर, आगे बढ़ने का पुरुषार्थ करते हैं। प्राचीन भारतीय विचारक नीतिकारों ने कहा है—

यद्यदाचरित श्रेष्ठ स्ततदेवेत्तरो जनः ।

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥

जो जो आचरण, श्रेष्ठ महापुरुष करते हैं वे वे आचरण अन्य जन अनुकरण करते हैं। महापुरुष जिनको प्रमाणित करते हैं, समाज के सामने आदर्श प्रस्तुत करते हैं, समाज उसको प्रमाणित मानता है। व्यास देव ने विश्व के महाकाव्य रूपी महाभारत में भी कहा है—

“महाजनो येन गता सः पंथा ।”

महामानव जिस मार्ग में अपना दृढ़ उन्नतिशील पद को धारण करके आगे बढ़ते हैं, वही मार्ग दूसरों के लिये आदरणीय, अनुकरणीय, आदर्श पथ (मार्ग) बन जाता है। अर्थात् महापुरुष रत्नदीप स्तम्भ के समान स्वयं को प्रकाशित करने के साथ-2 दूसरों को भी प्रकाश प्रदान करते हैं।

प्रत्येक देश-विदेश के इतिहास-पुराणों के पन्ने महापुरुषों की जीवन-गाथा से ही सजीवता प्राप्त किये हुए हैं। महापुरुषों की जीवन-गाथा यदि इतिहास-पुराणों से निकाल दी जाये तो इतिहासों के पन्ने निर्जीव कोरे कागज के समान रह जायेंगे। महापुरुषों के जीवन, चलते-फिरते जीवन्त इतिहास के सदृश्य हैं। “महापुरुषों से इतिहास बनता है किन्तु, इतिहास से महापुरुष नहीं बनते हैं।” महापुरुषों का जीवन निम्न प्रकार होता है—

चलते-चलते राह है, बढ़ते-बढ़ते ज्ञान ।

तपते-तपते सूर्य हैं, महापुरुष महान् ॥

महापुरुषों के महा व्यक्तित्व से ही सभ्यता संस्कृति एवं इतिहास को संजीवनी शक्ति मिलती है। प्रत्येक देश में महान् पुरुषों के पवित्र चरित्र आगामी पीढ़ी को

मार्गदर्शन रूप में प्रस्तुत करने के लिये बड़े-2 ज्ञानी, इतिहास वेत्ता—महापुरुषों ने लिपिबद्ध करके रखे, जिसको इतिहास, पुराण, चारित्र, जीवन—गाथा आदि नामों से पुकारा जाता है। जैन-धर्म में एक महान् ज्ञानी ऋषि, पुराण, इतिहास के वेत्ता आचार्य जिनसेन स्वामी ने एक महान् ऐतिहासिक ग्रन्थकी रचना की है, जिसका नाम आदि पुराण या महापुराण है। आदि पुराण भारतीय इतिहास की नहीं बल्कि विश्व इतिहास का महान् कोष है। महाप्राज्ञ आचार्य श्री ने वृषभादि धर्म तीर्थ के नायक 24 तीर्थकर, राष्ट्र के अधिनायक भरतादि 12 चक्रवर्ती, 9 नारायण 9 प्रतिनारायण 9 बलभद्र आदि ऐतिहासिक महापुरुषों का जीवन चरित-चित्रण के माध्यम से इतिहास, सभ्यता, संस्कृति, धर्म, राजनीति, समाजनीति आदि का सुन्दर विशद वर्णन किया है।

केवल कुछ सत्ता लोलुपी निसृंश व्यक्तियों के द्वारा मानवीय सभ्यता—संस्कृति, धर्म, धन—जन, जीवन को विध्वंस करने वाले युद्ध—विग्रह—कलह आक्रमण, अत्याचार अनाचार का वर्णन यथार्थ में इतिहास नहीं है, यह तो इतिहास के लिए कलंक स्वरूप है। परंतु महामानव की पवित्र उदात्त प्रेरणाप्रद पवित्र गाथा ही इतिहास है, जिसके माध्यम से मानव को पवित्र शिक्षा एवं दिशा बोध होता है।

जिस प्रकार ग्रीक की प्राचीन सभ्यता एवं संस्कृति के अध्ययन के लिये वहाँ के महान् दार्शनिक नीतिवान आदर्श ‘प्लेटो’, ‘अरस्तू’, ‘सूकरात’ आदि का जीवन चरित्र अध्ययन करना चाहिये। उसी प्रकार प्राचीन भारतीय सभ्यता—संस्कृति, नीति, नियम को जानने के लिये प्रातः स्मरणीय पुण्यश्लोक ऋषभदेव तीर्थकर, भरतादि चक्रवर्तियों का जीवन—चरित्र अध्ययन करना आवश्यक है। जैसे, भारत के स्वतन्त्रता—संग्राम के समय में ‘महात्मा गांधी’ कहने से ‘भारत’ तथा भारत कहने से ‘महात्मा गांधी’ का ग्रहण देश—विदेश के लोग करते थे उसी प्रकार उस युग की सभ्यता—संस्कृति परिस्थिति का अध्ययन उस कालीन महापुरुषों के जीवन—चरित्र के अध्ययन से प्राप्त होता है।

हिन्दू धर्म में यज्ञ में होने वाले हिंसात्मक थोथे क्रिया कलाओं से ऊबकर एवं असारता को हृदयंगम करके तथा अहिंसा के समर्थ प्रचार—प्रसार क्षत्रिय तीर्थकरों के तथा महापुरुषों के प्रभाव में आकर हिन्दू धर्म में भी कुछ आध्यात्मिक क्रान्तिकारी महापुरुष हुए। आध्यात्मिक साधना, ध्यान, मनन, चिंतन, मन इन्द्रिय—संयमन, आकिञ्चन आदि उपायों से ही स्व—पर इहलोक—परलोक एवं आध्यात्मिक उन्नति

हो सकती है। इस सिद्धान्त का पूर्ण रूप से समर्थन करके, आचरण करके, प्रसार करके भोले भ्रष्ट मानव समाज को सुपथ में लाने का अकथनीय भागीरथी प्रयास किया। यह सब उपर्युक्त विषयों का विवरण उपनिषद, भागवत पुराण आदि से स्पष्ट प्रतिभासित होता है। क्रान्तिकारी महापुरुष में से महर्षि याज्ञवल्क्य, मैत्रेय, श्वेतकेतु, राजऋषि जनक, शुकदेव आदि का नाम अविस्मरणीय है।

विश्व संस्कृति में भारतीय संस्कृति सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि पूर्ण आध्यात्मिकता ही भारतीय संस्कृति का प्राण है। यदि भारतीय संस्कृति में से आध्यात्मिकता को निकाल दिया जाये तो वह निर्जीव हो जायेगी। आध्यात्मिक के मूर्तिमान स्वरूप भारतीय तत्व वेत्ता ज्ञान—विज्ञान सम्पन्न ऋषि मुनि साधु—सन्त होते हैं। अतः साधु सन्त ही भारतीय संस्कृति के प्राण है। भारतीय संस्कृति माने साधु संस्कृति है। जब तक हम साधुओं को आदर—सम्मान की दृष्टि से नहीं देखेंगे, उनकी रक्षा, सेवा, उनकी समृद्धि नहीं करेंगे तब तक हम भारतीय संस्कृति की सुरक्षा समृद्धि नहीं कर सकते हैं। भारतीय संस्कृति आध्यात्मिक साधु संत की संस्कृति होने के कारण भारतीय संस्कृति के अध्ययन के लिये, परिज्ञान के लिये साधुओं की पवित्र जीवनगाथा का अध्ययन अनिवार्य ही है।

इन महापुरुषों के जीवन से उनके चरित्र, पवित्र आचरण के साथ—2 सभ्यता—संस्कृति—धर्म, नीति—नियम, सदाचार, ज्ञान—विज्ञान, शिक्षा—दीक्षा, कला—कौशल आदि का परिज्ञान होता है। उनके पवित्र आदर्श चरित्र अध्ययन से अंतरंग में उनके जैसे बनने की अन्तः प्रेरणा स्वतः जागृत होती है। उस प्रेरणा से प्रेरित होकर प्रगतिशील मानव उत्तरोत्तर प्रगति करते हुए उनके जैसे बन जाता है। यही पवित्र पुरुषों की पवित्र गाथा के अध्ययन का मुख्य उद्देश्य है। एक मराठी कवि ने कहा है—

महापुरुष होउन गेले त्यांचे चारित्र पहा-जरा।

आपण त्यांचे समान हावे यां चे सापोडे बोध खरा ॥

अनेक महामानव इस धरती पर हो गए हैं, उनके चरित्र के अवलोकन—अध्ययन से हम भी उनके जैसे बनें इसमें ही यथार्थ सारभूत ज्ञान है अर्थात् उनका चरित्र अध्ययन करके उनके सदृश होना ही मुख्य उद्देश्य होना चाहिये।

केवल मनोरंजन के लिये महापुरुषों के चरित्र के अध्ययन से विशेष लाभ नहीं होता है। महापुरुष के अध्ययन से यदि हम कुछ नैतिक आध्यात्मिक उन्नति नहीं

करते हैं तो हमारा अध्ययन एक मनोरंजनकारी व्यसन रूप ही है। प्राचीनकाल में पवित्र पुरुषों के जीवन चरित्र का, विद्यापीठ, गुरुकुल, घर-घर में अध्ययन होता था। भारत के किशोर, नवयुवक—नवयुवतियाँ, प्रौढ़, अबाल—वनिता काल्पनिक अतिरंजित विषय वासना, अन्याय, अत्याचार का पोषण करने वले नोवेल, तिलस्मी आदि को पढ़कर कुपथगामी हो रहे हैं। यथार्थ से साहित्य उसे कहते हैं जिससे नैतिक सदाचार, विनय, अहिंसा सत्य—निष्ठा का पौष्टिक तत्व मिले। परंतु जिस साहित्य के माध्यम से कुशीलता, भ्रष्टाचार, उत्थ्रुंखलता आदि की प्रेरणा मिलती है, वे सब कुशास्त्र एवं मानव समाज के लिए अहितकर, कलंक स्वरूप, विष मिश्रित भोजन के सदृश हैं। यदि प्यास लगी है तो प्यास शान्त करने वाले एवं पौष्टिक तत्व को देने वाले पानी का सेवन करना चाहिए। उसी प्रकार अध्ययन की प्यास है तो सुसाहित्य का आस्वादन लेना चाहिए, परन्तु विष या मद्य से प्यास शान्त नहीं होती वरन् जीवन, स्वास्थ्य, नीति, धर्म नाश हो जायेगा उसी प्रकार अध्ययन की प्यास को बुझाने के लिये कुसाहित्य का सेवन नहीं करना चाहिए।

सत्साहित्य हमें कुछ क्षणों के लिए परमात्मा के सानिध्य में लाकर खड़ा कर देता है। एवं मन को सदाविचारों से पूर्ण व कुवचियारों से रिक्त कर देता है। सत्साहित्य आत्म निरीक्षण में सहायक सिद्ध होता है। सत्साहित्य दर्पण की तरह है जो हमारे मन में छिपे दोषों को प्रगट कर देता है एवं विषय वासनाओं से मुक्ति दिला देता है।

1. जो साहित्य आत्मा एवं परमात्मा का दिग्दर्शन करें।
2. जो साधना पद्धति का निरूपण करें।
3. जो संसार बंधन का स्वरूप समझाकर उस बंधन से मुक्त होने की प्रेरणायें दे।

पढ़ने का, स्वाध्याय का उद्देश्य हमारे अध्ययन क्षेत्र का विस्तार करना ही नहीं बल्कि उसकी गहराई में जाना है। ध्यान पूर्वक, गहराई से चिंतन मनन के साथ किया गया अध्ययन, स्वाध्याय ही लाभप्रद होता है। यह आवश्यक नहीं है कि बहुत से ग्रंथों को पढ़ा जाये। केवल एक ग्रंथ को ही एकाग्रतापूर्वक, उसने अर्थ को, भली प्रकार हृदयंगम करने से कई गुना लाभ होता है। इसीलिए मन की चंचलता को नियन्त्रित करना परम आवश्यक है। यह मन बहुत ही चंचल होता है। लेकिन इस चंचल मन को भी वश में किया जा सकता है। इस मन को वश में करने का यही सशक्त माध्यम है कि सत्साहित्य का अध्ययन एकाग्रता

पूर्वक रुचिपूर्वक किया जाये। लेकिन मेरा प्रायोगिक जीवन्त अनुभव है कि लोगसत्साहित्य की अपेक्षा अश्लील उपन्यास, नाटक, कथायें ही अधिक पढ़ते हैं। अगर उनसे धार्मिक साहित्य पढ़ने के लिए कहो तो बहुत से बहाने बनायेंगे। यहाँ तक कि फ्री में भी दो तो उसको आदर—सत्कार के साथ लेते भी नहीं बल्कि लेने में अपमान, शर्म महसूस करते हैं और उनको जूते—चप्पलों से भी अधिक खराब तरीके से बाँधकर ले जाते हैं। घरों में करोड़ों रुपयों का सामान होगा लेकिन 100-200 रुपये का सत्साहित्य नहीं होगा। इसीलिये इन सभी कारणों से भारतीयों का पतन हो रहा है।

गायत्री परिवार में यह प्रथा बहुत ही अच्छी है कि वे घर-2 झोला पुस्तकालय का प्रचार—प्रसार करते हैं। अन्य धर्मों में भी धार्मिक ग्रंथों के प्रति आदर—सत्कार का भाव मौजूद है, लेकिन विशेषकर जैन समाज में बहुत ही गंदी परम्परा है। जैन लोगों की रुचि स्वाध्याय, धार्मिक ग्रंथों के प्रति बिल्कुल नहीं है। मंदिरों में बहुमूल्य शास्त्रों के भण्डारों में दीमक कीड़े लगे हुए हैं लेकिन उनकी रक्षा—सुरक्षा की तरफ किसी का ध्यान नहीं है। बस अपने घर परिवार दुकान—फैक्ट्री से किसी को फुरसत नहीं। ज्ञान में बृद्धि का एक कारण जीर्ण—शीर्ण शास्त्रों की रक्षा सुरक्षा करना भी है। शास्त्रों का आदर—विनय बहुमान होना चाहिए तभी विद्या की प्राप्ति होती है। इसीलिए अपने आदर्श श्रेष्ठ, पवित्र, निर्मल जीवन जीनेके लिए जो महापुरुषों का महान् जीवन चरित्र आदि है उसका अध्ययन—स्वाध्याय करना चाहिए एवं अपने जीवन में वैसा ही आचरण क्रियान्वित करना चाहिए तभी हम महापुरुष बन सकेंगे वरना अनेकों ग्रंथों का अध्ययन भी कर लो लेकिन जीवन में क्रियान्वित कुछ भी ना करें तो वह हजारों पृष्ठ पढ़ना कुछ भी कार्यकारी सिद्ध नहीं होगा।





शक्ति और मर्यादा का प्रेरक पर्व- विजयादशमी

धर्मसभा को संबोधित करते हुए आचार्य रलश्री कनकनंदी जी गुरुदेव ने विजयादशमी (दशहरा) पर्व के परिप्रेक्ष्य में प्रकाश डालते हुए कहा कि भारत में रोज कुछ न कुछ पर्व – उत्सव मनाये जाते हैं। कुछ पर्व धार्मिक हैं तो कुछ पर्व सामाजिक है, तो कुछ पर्व राष्ट्रीय हैं, तो कुछ स्वस्थ संबंधी है तो कुछ व्यक्ति संबंधित हैं।। पर्युषण, षोडशकारण, रलत्रय, क्षमाभाव (क्षमावाणी) आदि पर्व धार्मिक-आध्यात्मिक पर्व है, पंचकल्याणक आदि पर्व व्यक्ति संबंधी पर्व है। यथा- महावीर जयंति, दीपावलि (महावीर भगवान का मोक्ष कल्याण) गुरु पूर्णिमा, गुरुनानक जयन्ति आदि। स्वतन्त्रता दिवस, गणतन्त्र दिवस आदि राष्ट्रीय पर्व है। अवसन्तोत्सव आदि सामाजिक स्वास्थ्य संबंधी पर्व है। कुछ पर्व अनेक पर्व स्वरूप में भी मनाये जाते हैं। यथा- दीपावली पर्व व्यक्ति परक होते हुए भी धार्मिक, सामाजिक, स्वास्थ्य सम्बन्धी पर्व भी है।

जिस प्रकार गन्ना के पोरों के गाँठ जोड़ते हुए गन्ना को पूर्ण बनाती है उसे पर्व कहते हैं। जो मनुष्य को अच्छे गुणों से अलंकृत करके जीवन को उत्साह से भर दे उसे उत्साह-उत्सव कहते हैं। भौतिक जीवन के लिये जिस प्रकार जल वायु भोजन आदि चाहिये उसी प्रकार नैतिक तथा आध्यात्मिक जीवन के लिये सद्गुण, सत्त्वेरणा, उत्साह आदि चाहिये। ये सब हम कुछ अंश तक धर्म से, महापुरुषों से घटनाओं से प्राप्त करते आये हैं। इसे ही प्राप्त करने की प्रक्रिया का एक रूप है पर्व – उत्सव।

जीवन एक सतत् प्रवाहमान-गतिशील-उन्नति-प्रक्रिया है। इसके बिना जीवन मृत सम हो जायेगा। जिस प्रकार कि जल-प्रवाह के बिना नदी नहीं हो सकती है या सूखी नदी या बंधी हुई नदी होगी। उसी प्रकार उन्नति के बिना जीवन शुष्क या बेकार अथवा अकड़ा हुआ होगा। उन्नति की प्रक्रिया के लिये उत्सव एक प्रेरक तत्व है। संसारी जीवों का जीवन विभिन्न कारणों से खण्ड-विखण्डित होता रहता है। उसे जोड़ने के लिये पर्व गाँठ का काम करता है। जिस प्रकार शिक्षा मनोविज्ञान में जब एक विषय को पढ़ते-पढ़ते बोरियत हो जाती है तब थोड़ा विश्राम लिया

जाता है या अन्य विषय का अध्ययन किया जाता है। उसी प्रकार रोजमरा के काम से जब जीवन निरस हो जाता है तब उसे सरस बनाने के लिये पर्व रुपी विश्राम तथा परिवर्तन की आवश्यकता पड़ती है। इससे पुनः नई चेतना, नया उत्साह, नई प्रेरणा, नई सरसता मिलती है। इन सब कारणों से पर्व मनाने की परम्परा प्रारम्भ हुई। परन्तु बाल्यकाल से अभी तक जो मैंने विभिन्न प्रदेशों की विभिन्न पर्वों का अध्ययन किया उससे इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि प्रायः पर्वों में पवित्रता के परिवर्तन में अपवित्रता, आध्यात्मिक के परिवर्तन में कषाय आवेशता, महापुरुषों के गुणानुकरण के परिवर्तन में गुण द्वेषता, सामाजिक सौहार्दता के बदले सामाजिक विद्रोह-विघटन, स्वच्छता के बदले अस्वच्छता, स्वास्थ्य के बदले अस्वास्थ्य का बोलबाला है। उसका कुछ दिग्दर्शन यहाँ कर रहा हूँ, जिससे उससे बचते हुए पर्व के उद्देश्य-पवित्रता-फल को प्राप्त किया जा सके।

धार्मिक पर्वों का मुख्य उद्देश्य आध्यात्मिक प्रगति-भाव की पवित्रता है। जैसा कि पर्युषण पर्व का उद्देश्य उत्तम क्षमा, मृदुता, सरलता, सत्य-शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य ब्रह्मचर्य आदि धर्म को समग्रता से ग्रहण करना होता है। इसके उद्देश्य से उपवास करना, मंदिर जाना, पूजा प्रार्थना करना, तीर्थयात्रा करना, धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय करना, दान देना, प्रवचन सुनना, संत समागम करना आदि विभिन्न धार्मिक कार्यक्रम किये जाते हैं परन्तु ये सर्व कार्यक्रम मूल उद्देश्य से रहित पाये जाते हैं। यथा- उपवास में तो भोजन त्याग कर देंगे परन्तु शरीर को सजाना, फैशन करना, क्रोध, अहंकार, मायाचारी, दिखावा, पर-निन्दा, पापात्मक-अनावश्यक गृहकार्य, ईर्ष्या, झगड़ा कलह, तू-तू मैं-मैं नहीं छोड़ेंगे। कुछ रूपयों का तो भोजन छोड़ देंगे परन्तु हजारों रूपये आत्म प्रसिद्धि के लिये विज्ञापन, पत्रिका, सजावट, बाज-गाजा में लगाएंगे। उपवास के उद्यापन में पूजा विधान करना चाहिये एवं मुनि आदि सुपात्रों को आहार, औषधि, उपकरण, ज्ञान वस्तिका आदि का दान देना चाहिये परन्तु प्रायोगिक रूप में पाया जाता है कि मुनि आदि के लिये तो कम दान दिया जाता है परन्तु नाम बड़ाई के लिये गृहस्थों को बर्तन आदि परिग्रह दिया जाता है।

मंदिर जाना, पूजा पाठ, प्रार्थना, तीर्थ-यात्रा करने का मुख्य उद्देश्य ‘वंदे तद्गुण लब्धये’ अर्थात् भगवान के समान ज्ञान, सुख-शांति, अहिंसा आदि गुणों को प्राप्त करने के लिये पूजादि की जाती है। पूजा सामग्री तैयार करना, मंदिर

को साफ करना, मंदिर की व्यवस्था करना, स्तुति पढ़ना, प्रार्थना करना, शरीर को नम्र करना, मंदिर की व्यवस्था करना, गुणों को ग्रहण करना, भगवान के उपदेश के अनुसार आचरण करना आदि पूजा है। परन्तु प्रायोगिक रूप से पाया जाता है कि केवल नौकर द्वारा तैयार सामग्रियों को चढ़ा देना पूजा का स्वरूप रह गया है। इतना ही नहीं, पूजा में सामग्री, दिशा, आसन काल, विधि, मान-सम्मान नाम आदि आदि को लेकर लड़ाई-झगड़ा, फूट, वैमनस्य आदि होते रहते हैं। पूजा के मध्य में भी पूजा आदि में ध्यान न देकर अनावश्यक गप्पे, पर निन्दा, दिखावा, ईर्ष्या, हँसी मजाक में लगे रहते हैं। तीर्थयात्रा, मेला में भी पूजा दर्शनादि कम करते हैं इधर उधर मनोरंजन के लिये घूमते फिरते हैं। हो हल्ला हुल्लड़बाजी गप्पे चुगली आदि करते हैं। चोरी, बलात्कार, गुण्डागर्दी भी करते हैं। अधिक क्या कहा जाए दूसरों के जूते-चप्पल की भी चोरी कर लेते हैं तथा शराब आदि पीते हैं परस्त्री-वेश्या गमन भी कुछ लोग करते हैं। इस प्रकार पर्वों में आध्यात्मिकता कम पाई जाती है परन्तु दिखावा कथायादि का आवेश अधिक पाया जाता है।

एक बार एक मंदिर के सामने एक गरीब व्यक्ति को मंदिर का द्वारपाल अंदर जाने नहीं दे रहा था। उस समय एक महिला वहाँ आती है और उस गरीब से पूछती है— तुम दुःखी क्यों हो ? गरीब बोलता है— यह मंदिर समता देवी का मंदिर है जो कि गरीब धनी रंक-राव को समान मानती है। परन्तु मैं गरीब होने के कारण मुझे द्वारपाल मंदिर के अंदर नहीं जाने देता है। यह सुनकर वह महिला बोलती है— बेटा ! तुम दुःखी मत हो। क्योंकि मैं स्वयं समता देवी होने पर भी मुझे इस मंदिर के अंदर जाने नहीं दिया जाता है। तुम तो मेरे भक्त हो तुम्हें कैसे अंदर जाने दिया जाएगा। और एक उदाहरण है जोन ऑफ आर्क का। देश को स्वतन्त्र करने वाली फ्रांस की जोन ऑफ आर्क को ईर्ष्या करके मार दिया गया। शेक्सपियर अपने नाटक में लिखते हैं कि आर्क के सम्मान में समारोह मनाया जाता है। समारोह में जब आर्क आती है तब वहाँ स्थित राजनेता यह विचार करते हैं कि इसके कारण हमारी सत्ता भी चली जायेगी। अतः उसकी हत्या कर देते हैं। यह दोनों उदाहरण सामाजिक, विकृत-मानसिकता को उद्घाटित करने वाले हैं। समाज जिसके पर्व मनाता है, जिसकी पूजा करता है, जिसके लिये मंदिर संस्थादि बनाता है, जिसकी मूर्ति बनाकर पूजा करता है वही साक्षात् जीवन्त उस महापुरुष का उसके समान अन्य महापुरुषों का भी अनादर करता है। इसके लिये उदाहरण,

सुकरात को विषपान, अब्राहिम लिंकन की हत्या, महात्मा गांधी की हत्या आदि। ये उदाहरण तो अति प्रसिद्ध हो गये, पुस्तकों में छप गये परन्तु हर रोज हर देश में हर धर्म में ऐसी घटनायें होती रहती हैं।

यहाँ तक कि पर्व में पूजा में— मेले में भी महा पुरुषों का अनादरादि करते हैं। पर्वादि में घर की सफाई में, शरीर के श्रृंगार में, मिठाइयों को बनाने में खाने में, परस्पर मिलने में, दिखावे में, विभिन्न औपचारिकता निभाने में इतने मस्त हो जाते हैं कि साधु संतों की सेवा, सल्कार, दर्शन से भी विमुख हो जाते हैं। कुछ पर्व में मादक वस्तुओं का सेवन, जुआ खेलना असभ्य हरकत करना पर्व का अभिन्न अंग ही मानते हैं। पर्व मेलादि में जब बन ठनकर चलते हैं उत्सव का मद चढ़ा रहता है तब तो साधु संतों का विनय करना तो दूर उनके सामने इतराते हुए चलेंगे, उनसे धक्का-मुक्की करेंगे, आने जाने के लिये उन्हें रास्ता तकनहीं देंगे, बैठने के लिये आसन नहीं देंगे। अधिक क्या कहाजावें जब पंचकल्याणक के लिये भी जिन साधुओं को बार-बार अनुरोध करके दूर से लाते हैं। उनके निवास, आहार-विहार-निहार आदि की भी व्यवस्था सही नहीं करते हैं। पंचकल्याणक के बाद तो उपर्युक्त व्यवस्था तो और भी कमजोर पड़ जाती है। पंच कल्याणक में साधुओं का धर्मोपदेश तक नहीं होने देते। राजनेता बुलाएंगे, ठाठ-बाठ से उनका स्वागत करेंगे, नेता को इच्छानुसार लम्बे समय तक भाषणबाजी करने देंगे, समाचार पत्र में उनके फोटो भाषण बहुत छपायेंगे परन्तु जिन साधुओं को सैंकड़ों किलोमीटर पैदल चलाकर लायेंगे उनके फोटों प्रवचनादि समाचार पत्र में न ही धर्म प्रचारके लिये देंगे। साधुओं को इसलिये लाते हैं कि साधु के कारण भीड़ अधिक होगी और बोलती से धनाधिक आवेग। पर्व के प्रमुख उपदेश के अनुसार नहीं चलेंगे परन्तु साधु को स्वयं के अनुसार चलायेंगे। पर्व के प्रमुख कार्यक्रम को महत्व कम देंगे परन्तु बाह्य आडम्बर, गाजा-बाजा, सजावट, रंगारंग कार्यक्रम का अधिक महत्व देंगे।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। “परस्परोपग्रहो जीवानाम्” अर्थात् परस्पर उपकार करना जीवों का धर्म है। परस्पर उपकार आदान-प्रदान करना, संगठित होकर कार्य करने से कठिन कार्य भी सरल हो जाता है। पर्व का एक उद्देश्य संगठन आदि बढ़ाना भी होता है। पर्व के निमित्त से अधिक लोग एकत्रित होते हैं, जिससे प्रवचन, चर्चा विचार विमर्श के माध्यम से समस्याओं का समाधान

किया जाता है आगे के लिये निर्णय लिये जाते हैं। प्रायोगिक रूप से अधिकतर पाया जाता है कि जिस प्रकार महिलायें मिलने पर मौन से नहीं रह सकती है। उसी प्रकार जब पर्व में अधिक लोग इकट्ठे होते हैं तो कलह हुए बिना नहीं रहता है। उस पर्व को मनाने वाले और उनके विरोधियों में गाली—गलोच, मार—पीट, पथराव आदि होते रहते हैं। कभी—कभी तो मानने और मनानेवाले मनभेद, मतभेद व्यवस्था, नाम, मान—सम्मान धन व्यय आदि को भी लेकर परस्पर में झगड़ादि करते हैं। इसके संगठन में परिवर्तन में विघटन अधिकतर होते हैं। यहाँ तक पाया जाता है कि विरोधियों को नीचा दिखाने के लिये ईर्ष्या से झगड़े को उभारने के लिये, भी पर्व मनाते हैं। अनेक मंदिर, मूर्तियों का निर्माण तो फूट के लिये या फूट को स्थिर करने के लिये होता है। यह सब यथार्थता से रहित अयथार्थ का प्रवाह है।

प्रवाहे वर्तते लोके न लोकः पारमार्थिक ।

प्रत्यक्षं मार्यते सर्पो गोमयेष्विह पूज्यते ॥

लोग तो प्रवाह में वर्तते हैं। अर्थात् देखा देखी करते हैं। परमार्थ का विचार करने वाले नहीं हैं। इस जगत् में साँप सामने आ जाये तो मारा जाता है परन्तु गोबर से बनाया हुआ साँप पूजा जाता है। मानव उत्सव प्रिय तो है लेकिन रहस्यप्रिय, सत्यप्रिय नहीं है। सम्पूर्ण रामायण समाप्त हो जाने के बाद एक व्यक्ति ने पूछा—रावण को राम ने मारा या लक्ष्मण ने। इसी प्रकार मेरा जीवन्त अनुभव है कि भारतीय लोग पर्व उत्सव तो मना लेते हैं लेकिन उनको यह मालूम नहीं कि किस पर्व का क्या उद्देश्य, महत्व है। जिसपर्व को हम मना रहे हैं वह कहाँ से कैसे प्रारम्भ हुआ? केवल अंधानुकरण करते जा रहे हैं वह भी मिथ्या, असम्यक्।

आज जिस पर्व को हम मना रहे हैं जैन धर्म में उसे विजयादशमी कहते हैं। क्योंकि भरत चक्रवर्ती आज के दिन छःह खण्डों की विजय करके अपनी राजधानी अयोध्या वापिस आये थे एवं आयुधशाला में अस्त्र—शस्त्र, चक्ररत्न की पूजा की थी। वैदिक धर्म में विजयादशमी व दशहरा कहते हैं। क्योंकि इसदिन दस सिरवाले रावण को मारकर रामचंद्रजी अपनी जन्म भूमि अयोध्या आये थे। एवं अस्त्र—शस्त्रों की पूजा की थी। इसीलिए आज के दिन आज भी अस्त्र—शस्त्रों की पूजा की जाती है।

इस पर्व के महानायक रामलक्ष्मण, विभीषण, सीता, मंदोदरी आदि हैं।

खलनायक रावण, सूर्पणखा, मंथरा आदि हैं। मुख्य पात्र राम, रावण सीता, सूर्पणखा है। महानायक के पात्र वास्तविक आदर्शवादिता को लिए हुए हैं एवं कुछ खलनायक के पात्र काल्पनिक हैं। कवि ने काल्पनिक पात्र इसीलिए गढ़ा है क्योंकि व्यक्ति आध्यात्मिक रहस्य को नहीं पहिचान पाते बल्कि कथा—कहानियों के माध्यम से जल्दी समझ लेते हैं। इसीलिए वेताल पंचविंशति, पंचतन्त्र आदि कहानियों की रचना की गयी। पद्मपुराण, पाण्डवपुराण आदि पुराण आदि कथा कहानियों के प्रथमायुग ग्रंथों की रचना हुई।

रामचंद्रजी को हिन्दू, बौद्ध ही नहीं मानते बल्कि विश्व संस्कृति में राम का नाम श्रद्धा आस्था के साथ सभी लेते हैं। यहाँ तक कि 24 तीर्थकर भी इतने प्रसिद्ध नहीं हुए जितने की रामचंद्रजी। शांतिनाथ—कुन्त्युनाथ अरहनाथ तीन—2 पद के धारी थे फिर भी इतने प्रसिद्ध नहीं हैं।

इतिहास में 23 तीर्थकरों को तो काल्पनिक बताया है—जो कि गलत है। जबकि राम की सैंकड़ों कहानियाँ हर भाषाओं में हैं। हरप्रकार की रामलीला का रंगमंच होता है। आखिर ऐसा क्यों? क्योंकि राम का व्यवहारिक व्यक्तित्व अधिक क्रांतिकारी हैं। जबकि 24 तीर्थकरों का इतिहास समान ही है। केवल पार्श्वनाथ महावीर ऋषभदेव की घटनायें कुछ अलग हैं। इसीलिए उनका थोड़ा नाम है। राम का जीवनचरित्र दार्शनिक, आध्यात्मिक, नैतिक व्यवहारिक सभी दृष्टियों से अलौकिक हैं।

मैथलीशरणगुप्त ने एक जगह लिखा है कि “राम प्रसिद्ध नहीं हुए बल्कि राम के माध्यम से हम सब कवि ही प्रसिद्ध हो गये।”

महानायक राम एवं उनके सहायक लक्ष्मण दोनों ही वीर—साहसी शांत—सौम्य, मर्यादा पुरुषोत्तम, अन्याय के कट्टर विरोधी, सभी आदर्श श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न हैं। छोटी अवस्था में ही बर्बर भील राक्षस जाति को दोनों भाईयों ने परास्त करके राजा जनक के राज्य की रक्षा की थी। छोटा शेर हाथी को भी मार देता है। थोड़ी सी अग्नि की चिंगारी विशाल घास के ढेर को जला देती है। इसीप्रकार तेजस्वी, महामानवों की आयु की गणना नहीं की जाती बल्कि वे तो छोटी अवस्था में ही हर कला—कौशल में पारंगत होते हैं। लोकमान् त्य तिलक, मदन मोहनमालवी, राजेन्द्रप्रसाद, महात्मा गांधी, रानी लक्ष्मीबाई, शेरशाहसूरी, महाराणा प्रताप आदि महापुरुष छोटी अवस्था से ही बुद्धिमान, धीर—वीर—साहसी शौर्यवान् सूरवीर योद्धा

थे। इसीप्रकार आज मैं राम लक्ष्मण सीता, सूर्पणखा, कैकयी, रावण आदि के विषय में कुछ संक्षिप्त वर्णन करूँगा जिस भारतीय सभ्यता-संस्कृति में पिता से श्रेष्ठ माँ को माना जाता है ऐसी संस्कृति होने पर भी उस समय में लक्ष्मण में सूर्पणखाँ की नाक काटी थी। आपने कभी सोचा क्यों काटी नाक ? जबकि वह साधारण स्त्री नहीं थी। विद्याधरी अनुपम सुंदरी तथा त्रिखण्डाधिपति रावण की बहिन थी। लेकिन लक्ष्मण ने उसकी नाक इसीलिए काटी कि सूर्पणखा उस समय की वर्तमान में जिसप्रकारकी हीरोइन नग्नडांस करती हैं उसी प्रकार की युवती थी। वह रूप परिवर्तन करके पर पति को मोहित करती थी। जब वह राम के रूपलावण्य को देखकर उन पर मोहित हो जाती है तो अपना सुंदर रूप बनाकर मायाचारी करके राम के पास पहुँचती है और शादी का प्रस्ताव रखती है लेकिन राम उसकी माया को पहिचान लेते हैं और उसके दुष्कर्म, पापकर्म की सजा हेतु लक्ष्मण के पास भेज देते हैं। लक्ष्मण उसके अनैतिक आचरण को देखकर उसकी नाक इसीलिए काटते हैं कि चेहरे की सुंदरता नाक से ही होती है। जब उसकी नाक ही कट जायेगी तो कैसे अपना सुंदर रूप बनायेगी। और पर-पुरुषों को अपने जाल में फँसायेगी। वस्तुतः ऐसे व्यक्तियों के साथ ऐसा करना ही चाहिए। नहीं तो वे अपने दुष्कर्मों की गंदगी से सम्पूर्ण वातावरण दूषित, गंदा करते हैं। जबतक भारत में लक्ष्मण, कृष्ण पैदा नहीं होंगे तबतक इन सूर्पणखा, पूतनाओं का अंत नहीं हो सकता। पहले तो एक ही सूर्पणखा थी लेकिन वर्तमान में घर-2 परिवार-2 में हजारों-लाखों सूर्पणखा हैं। ये सभी बाहरी पहिनावा पहनकर स्वयं को सुंदर दिखाती हैं। लेकिन अन्तरंग में महाविष से भरी राक्षसी होती है। पूतना होती है। 'पूत' माने पुत्र 'न' माने नहीं जिसे पुत्र नहीं चाहिए वह पूतना। पहले ही पूतना श्रीकृष्ण को मारने हेतु अपने स्तनों में विष मिलाकर दूध पिलाने आयी थी। आज भी अनेकों पूतनायें हैं जो अपनी सुंदरता नष्ट न हो जाये इस कारण दूध नहीं पिलाती या बच्चों की गर्भ में ही हत्यायें करवा देती हैं। खलनायक रावण का प्रथम नाम दशानन था। क्योंकि जब उसका जन्म हुआ तब उसने एक भारी रलजड़ित हार को अपने हाथों से खींच लिया और उस हार में उसके दस मुँह दिखाई देने लगे इसीलिए उसका नाम दशानन रखा गया। लेकिन इसका वैज्ञानिक कारण ये है कि उसको सोचने समझने की शक्ति, क्षमता, बुद्धि इतनी तीव्र, अधिक थी दस व्यक्तियों की बुद्धि अकेले उसके पास थी। बीस हाथ इसीलिए थे कि 10 आदमियों का बल, शक्ति

उस अकेले के पास में था। बाद में उसका नाम रावण क्यों पड़ा ? क्योंकि रावण एक बार आकाश मार्ग से अपने विमान में बैठकर जा रहा था तो कैलाशपर्वत पर बालि मुनिराज तपस्या कर रहे थे। उनकी अलौकिक, अद्भुत, कठोर तप की शक्ति के सामने रावण का विमान उनके ऊपर से होकर चल नहीं पाता जब विमान चलते-2 रुक जाता है तो रावण नीचे देखता है। उसे बालि मुनिराज दिखाई देते हैं। बालि और रावण की शत्रुता थी। जबकि बालिने वैरभाव त्यागकर मुनिपद को ग्रहण कर लिया लेकिन रावण ने अपनी शत्रुता अभी नहीं छोड़ी और अपने शत्रुता का बदला लेने हेतु बालि मुनि को कैलाशपर्वत सहित नीचे खाई समुद्र में डालना चाहा। लेकिन बालि मुनि (अवधिज्ञानी, मनः पर्ययज्ञानी) थे वे रावण के मन की बात जान गये। उन्होंने सोचा मुझे गिराये तो चलेगा लेकिन इस पहाड़ पर भरत चक्रवर्ती ने जो 72 जिन चैत्यालय बनवाये हैं उनका भी विनाश हो जायेगा एवं इस जंगल में जितने भी पशु-पक्षी रहते हैं सभी मारे जायेंगे। इन सभी की रक्षा हेतु बालि मुनि ने अपने पैर के अंगूठे को थोड़ा सा दबा दिया जिससे रावण दब गया और रोने लगा मुझे छोड़ दो। बालि मुनिने अंगूठे को ढीला कर दिया। रावण को अपनी करनी पर पश्चाताप हुआ। उसने क्षमा मांगी और बालि मुनि को भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। इसप्रकार इतना बलशाली रावण भी रो पड़ा इसीलिए तब से उसका नाम रावण हो गया।

रावण हर दृष्टि से शारीरिक, मानसिक सभी में दृढ़-बलवान् शक्तिवान् था। जब उसे बह रूपिणी-विद्या की सिद्धि करनी थी तब कितने भी उपर्युक्त हुए लेकिन अटल-निश्चल रहा। डिगा नहीं। जब भगवान् की भक्ति करता था तो वीणा के तार टुट गये तो अपनी हाथों की नसें निकाल कर वीणा में डालकर सतत् भगवान् की भक्ति को जारी रखा। इस प्रकार उसकी आदर्शवादिता के कई उदाहरण हैं। बस एक सीता हरण के कारण उसका नाम विश्व में कलंकित हो गया। फिर भी उसने अपनी प्रतिज्ञा को नहीं तोड़ा। अनंतवीर्य केवली के पादमूल में रावण ने व्रत लिया था कि जो स्त्री मुझे वरण नहीं करेगी उसके साथ में जबरदस्ती बलात्कार नहीं करूँगा। और इस व्रत का पालन उसने अंतिम समय तक किया। वह जानता था कि मैंने सीता का हरण करके ठीक नहीं किया। लेकिन अपनी हार न मानने के कारण, अपना मान न गिर जाये इस कारण उसने सीता को वापिस नहीं दिया।

उस समय एक रावण के अन्याय, अत्याचार, पापाचार अनीति को मिटाने

हेतु रामचंद्रजी ने युद्ध किया। उन्होंने मेरी पत्नी सीता है इस कारण युद्ध नहीं किया बल्कि समस्त स्त्री जाति के बंधनों को तोड़ने हेतु, समस्त स्त्री जाति की रक्षा-सुरक्षा हेतु यह युद्ध किया था। समस्त स्त्री जाति की रक्षा-सुरक्षा हेतु युद्ध किया था। क्योंकि एकपाप से अनेकों पाप उत्पन्न होते हैं, एक पुण्य से अनेक पुण्य होते हैं, एक छोटी सी भूल से बड़ी भूल बन जाती हैं, एक अच्छी-बुरी घटना से अनेक अच्छी-बुरी घटनायें जन्म लेती हैं। इसलिए आज एक सीता का हरण किया और उसकी मैं रक्षा नहीं करूँगा, उस पापाचार को नहीं रोकूँगा तो आगे भविष्य में अनेकों स्त्रियों के शीलहरण होंगे, उन्हें हर व्यक्ति हेय-अनादर की दृष्टि से देखेगा इसीलिए राम ने रावण से युद्ध किया।

राम को मर्यादा पुरुषोत्तम इसीलिए कहते हैं कि राम ने स्वप्न में, कितनी भी बड़ी आपत्ति-विपत्ति संकट के समय अपनी मर्यादा-विवेक को कभी नहीं त्यागा एवं अन्याय अनीति, पापाचार, भ्रष्टाचार, पापाचार को स्वप्न में भी सहन किया। जब रामचंद्रजी के राज्याभिषेक की पूरी तैयारी हो चुकी थी और कैकई-मंथरा के कारण भरत को राजगद्दी का प्रस्ताव आया तब राजा दशरथ चिंतित हो उठे कि बड़ा बेटा राम है और भरत छोटा। मर्यादा-नियम कानून के अनुसार राम को ही राजगद्दी देने का नियम है लेकिन मैंने पूर्व में कैकई को वचन दिया था वह वचन भी पालन करने योग्य है। जब पिता की ऐसी विषम परिस्थिति का ज्ञान राम को हुआ तब उन्होंने स्वयं वन जाने का निर्णय ले लिया और भाई भरत को खुशी-2 राजगद्दी पर बैठा दिया और स्वयं जंगल में चले गये। यह राम की आदर्शवादिता, विवेक का, कर्तव्यपरायणता, भ्रातवात्सल्यता का समस्त विश्व के लिए ज्यलन्त उदाहरण है। इसप्रकार का कथन जैन रामायण पद्मपुराण के अनुसार है। लेकिन हिन्दू, वाल्मीकी रामायण में कैकई ने रामचंद्र के लिए 14 वर्ष का वनवास एवं अपने पुत्र भरत के लिए राजगद्दी माँगी थी। कैकई कहते किसे हैं जो बिना विवेक के सबकुछ कह दे वे सब कैकई ही है। मंथरा यानि जो परिवार, समाज, राष्ट्र का मंथन करें मथे, बिगड़े वे सब मंथरा है। उस समय एक कैकई मंथरा के कारण राम को वनवास मिला। आज घर-2 परिवार-2 में, देश-2 में कैकई-मंथरायें सैकड़ों-करोड़ों हैं इसीलिए आज भाई-2 पिता-पुत्र, माँ-बेटा, सास-बहु, समाज-समाज राष्ट्र-2 विखंडित हैं, अशांत हैं।

भरत उस समय ननिहाल में थे। वहाँ से आने पर अपनी राजगद्दी एवं बड़े भाई का वन गमन सुनकर भरत माँ को प्रताडित करते हैं एवं भाई को वापिस

लेने जंगल में पहुँचते हैं लेकिन माँ-बाप की आज्ञापालन हेतु रामचंद्र जी वापिस नहीं आते। अंत में विवश होकर भरत रामचंद्र की चरण पादुका राज्यसिंहासन पर रखकर उन्हीं के नाम पर स्वयं उनका सेवक बनकर राज्यभार सँभालते हैं। यह है एक बड़े भाई के प्रति अगाध, अटूट वात्सल्य, आदर का श्रेष्ठ उदाहरण है। चरणपादुका से तात्पर्य केवल यह नहीं है कि राम के चरणों से भरत ने चप्पल भी ले ली। चरण पादुका से तात्पर्य यह है कि जिस मर्यादा, विवेक, शील, सदाचार, न्याय के पथ पर मेरे बड़े भाई चल रहे हैं उसी न्याय-कर्तव्य के पथ पर मैं चलूँ एवं पालन करूँ। वे उनकी खड़ाऊँ नहीं लाये। अगर लाये भी हो तो यह गलत कार्य है क्योंकि रामचंद्र को जंगल में काँटों-पत्थरों की वेदना हुई होगी। भरत घर में रहकर भी वनवासी के समान ही रहें क्योंकि राम वन में थे और भरत उन्हीं के पथ पर चलते इसीलिए भरत राज्य में रहते हुए भी राजसुखों को नहीं भोगते थे। वास्तव में लोकतंत्र के भरत आदर्श संस्थापक थे। आज लोकतंत्र के नेता कितने भ्रष्ट हैं। उन्हें तो जेल में भी जगह नहीं मिलनी चाहिए। क्योंकि उन अपवित्र आत्माओं के वहाँ जाने से वह स्थान भी अपवित्र हो जायेगा। क्योंकि जेल में तो नारायण श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था इसीलिए जेल का स्थान तो पवित्र है।

आज परिवार में, समाज में, राष्ट्र में, विश्व में भरत जैसों की आवश्यकता है। क्योंकि हर व्यक्ति की धन के प्रति इतनी लिप्सा बढ़ चुकी है कि वह धन के लिए बुरे से बुरा खोटे से खोटा काम करने को तैयार है। एक छोटे गरीब व्यक्ति से लेकर केन्द्र सरकार, राज्य सरकार भी सत्ता-संपत्ति धन के लिए अन्याय, अनीति, भ्रष्टाचार, पापाचार, को बढ़ावा, प्रोत्साहन दे रहे हैं। मानों सदाचार, संतोष, दया-क्षमा, करुणा, परोपकार, प्रेम, वात्सल्य, सहिष्णुता, संवेदना सद्गुण, सत्‌आचरण नाम की चीज से वे एकदम अनाभिज्ञ अजानकार हैं। मान-सम्मान, लोक मर्यादा सभी कुछ धन के पीछे त्याग कर मर्यादा की सीमाओं को तोड़ रहा है।

सत्य के नाम पर असत्य चैन की साँसें ले रहा है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि ऐसे रुद्धिवादी, असम्यक् पर्व मनाना छोड़ दे तो करोड़ों-अरबों रुपया बच जायेगा। क्योंकि धार्मिक सामाजिक, राष्ट्रीय सभी प्रकार के पर्व दूषित हो चुके हैं। आप सभी उन विकृतियों को निकालने का साहस भी नहीं करपाते बल्कि विकृतियों को जोड़ने में सहायक बनते हो। आज सभी की धार्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, नैतिक, आध्यात्मिक चेतना मर चुकी है। सभी जगह भ्रष्टाचार पापाचार, अन्याय, अत्याचार जिन्दाबाद है। लेकिन न्याय, शील, सदाचार, मर्यादा, विवेक में वह बल है कि

वनवासी राम ने सत्ताधारी रावण को भी धाराशायी कर दिया था। अन्याय के आगे सब नष्ट हो जाता है। रावण इतना वैभव, सत्ता संपत्तिवाला था, सोने की लंका थी, पुष्पक विमान, लंबा-चौड़ा परिवार लेकिन अन्याय के मार्ग पर चला तो सब नष्ट हो गया।

‘इक लख पूत, सवा लख नाती। ता रावण घर दिया न बाती॥’

इसीलिए विजयादशमी पर्व के अवसर पर हम सभी यही शिक्षा ले कि हम अन्याय, अनीति के मार्ग पर नहीं चलेंगे। पर्वों के उद्देश्य अच्छे हैं लेकिन प्रायोगिक रूप से विपरीत कार्य पाया जाता है। जिसप्रकार राजनेताओं का कर्तव्य है कि जनता की सेवा करना उनके दुखों को दूर करना परन्तु प्रायोगिक रूप में वे जनता का शोषण करते हैं, उन्हें कष्ट देते हैं और जनता से दास के समान व्यवहार करते हैं। पर्वों में अनावश्यक आडम्बरों में अनाप-शनाप खर्च करेंगे परंतु पड़ोसी के गरीब भाईयों की सेवा, सहायता नहीं करेंगे। दूसरों की सेवा-सहायता में जो पर्व-उत्सव है— आनंद-उल्लास आत्मसंतोष है, वह सब बाह्य आडम्बरात्मक पर्व में नहीं।

जो पर्व अयोग्य है, भले वह अपना हो या दूसरों का उसमें सहभागी नहीं होना चाहिए परन्तु जो योग्य पर्व है उसमें सहभागी होना चाहिए। दूसरों के पर्वों के अच्छे आदर्शों को स्वीकार करना चाहिए परंतु स्वयं के पर्व के भी अनादर्श को स्वीकार नहीं करना चाहिए। इसीलिए आज के दिन हम सभी आदर्शों को ग्रहण करें और रुद्धिगत मिथ्या मान्यताओं का परित्याग करें।

हम रावण का पुतला तो जलाते हैं लेकिन उसमें कितने महान् गुण थे उन गुणों को ग्रहण नहीं करते। हम तो अनेकों अवगुणों से भरे हुए हैं फिर हमें क्या करना चाहिए यह कभी सोचते नहीं। क्योंकि हमारी दृष्टि स्वयं पर नहीं दूसरों पर रहती है। दूसरों के सरसों के बराबर अवगुण भी हमें सुमेरु के सम दिखाई देते हैं और स्वयं के सुमेरु सम अवगुण सरसों के समान भी दिखाई नहीं देते। हमारी दृष्टि संकीर्ण दूसरों को देखने वाली हो गयी है। इसीलिए हमारा सुधार नहीं हो पा रहा है। अगर हमें अपना वास्तविक सुधार ही करना है तो स्वयं का निरीक्षण-परीक्षण, अवलोकन करना होगा एवं विवेक न्याय के पथ पर चलना होगा तभी सच्चे सुख शांति का मार्ग मिलेगा। सभी संसारी प्राणियों को अनंत सुख, अनंत शांति मिले, अन्याय, अत्याचार, पापाचार, भ्रष्टाचार का विनाश हो, न्याय की विजय हो ऐसी मेरी मंगल / शुभ, कल्याणकारी भावना-कामना है।

अथ वैज्ञानिक जिज्ञासा : आध्यात्मिक समाधान



प्रश्न-1 (जिज्ञासु) धर्म किसे कहते हैं?

उत्तर— (कनकनन्दी) वस्तु स्वभाव को धर्म कहते हैं या जिससे जीव का सर्वांगीण विकास हो उसे धर्म कहते हैं, अथवा जिससे वास्तविक शाश्वतिक सुख-शांति मिले उसे धर्म कहते हैं, या अहिंसादि पाँचों व्रतों को धर्म कहते हैं, अथवा उत्तमक्षमादि दस धर्मों को धर्म कहते हैं। रलत्रय को भी धर्म कहते हैं। जिससे व्यक्ति से लेकर समाज, राष्ट्र, विश्व में सुख-शांति की स्थापना हो; प्रेम, मैत्री, समता, संगठन, एकता का साम्राज्य हो उसे धर्म कहते हैं। उपरोक्त धर्म की विभिन्न परिभाषायें होते हुए भी संपूर्ण परिभाषाओं के रहस्य या सत्य-तथ्य, लक्ष्य एक समान है।

प्रश्न-2 (जि.) विज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर— (क.) विशेष ज्ञान को विज्ञान कहते हैं; या विधिवत् ज्ञान को विज्ञान कहते हैं। प्रकृति का क्रमबद्ध, व्यवस्थित अध्ययन या शोध-बोध, खोज/अविष्कारा को भी विज्ञान कहते हैं।

प्रश्न-3 (जि.) विज्ञान एवं धर्म में क्या अन्तर है?

उत्तर— (क.) सत्य के शोध-बोध की दृष्टि से विज्ञान एवं धर्म में कोई अन्तर नहीं है परंतु आधुनिक विज्ञान अभी पूर्ण सत्य को शोध-बोध एवं उपलब्ध नहीं कर पाया है, परंतु वास्तविक सच्चा धर्म एवं धार्मिक महापुरुष सम्पूर्ण वास्तविक सत्य का शोध-बोध एवं उपलब्ध कर लेते हैं इसीलिए धर्म पूर्ण सत्य है एवं विज्ञान आंशिक सत्य है।

प्रश्न-4 (जि.) परन्तु धर्म के नाम पर अनेक मिथ्या परम्परायें, अंधविश्वास, मूढ़ मान्यतायें, भेदभाव, ऊँचनीच, कटुता, बलिप्रथा, हिंसा भी पायी जाती है क्या यह वास्तविक धर्म है?

उत्तर— (क.) नहीं! यह कदापि धर्म नहीं हो सकता है। यह तो अधर्म है; धर्म के नाम पर कलंक है। भले ही ऐसी परम्परों धर्म के नाम पर स्वयं को धार्मिक जताने बताने और सिद्ध करने वाले करते हों, करवाते हों या उसे सिद्ध करने के लिए तर्क, शास्त्रों का आधार देते हों तो भी यह सब अधर्म है। क्योंकि यह

सब धर्म के स्वरूप एवं उद्देश्य से विपरीत है।

प्रश्न-5 (जि.) तब तो जो कुछ वैज्ञानिक, समाज सुधारक, राजनेता, साधु-संत, विद्वान् अंधविश्वास से युक्त धर्म को नहीं मानते हैं वह सही है?

उत्तर- (क.) बिल्कुल सही है। उन्हें मानना भी नहीं चाहिए। इसके विरुद्ध में उसे परिमार्जित करने के लिए समग्रता से क्रांति करनी चाहिए। इसीलिए तो बलिप्रथा का विरोध महात्मा बुद्ध और महावीर भगवान् आदि ने किया; सती दाहप्रथा का विरोध राजा राममोहनराय ने किया; दास प्रथा का विरोध अब्राहिम लिंकन, महात्मा गाँधी आदि ने किया; मजदूर एवं गरीबों के शोषण का विरोध कार्लमार्क्स, लेनिन आदि ने किया; टोना, टोटका, भूत-पलीत, देव-देवी के प्रक्रोप से रोग होना आदि मिथ्या-मान्यताओं का विरोध वैज्ञानिकों ने किया जो उचित है, स्वागत योग्य है, कल्याणकारी है, ग्रहणीय है। इसलिए तो वैज्ञानिक युग में अनेक धार्मिक अंध विश्वास कटे हैं, छंटे हैं, कम हुए हैं धर्म का वैज्ञानिक विश्लेषण भी हो रहा है।

प्रश्न-6 (जि.) गुरुदेव (कनकनंदीजी) इसीलिए क्या आप वैज्ञानिक धर्म को श्रेष्ठ मानते हैं?

उत्तर- (क.) हाँ मैं इसीलिए वैज्ञानिक धर्म को श्रेष्ठ मानता हूँ। मेरी दृष्टि में जो केवल वैज्ञानिक लोग शोध-बोध करते हैं वहीं केवल विज्ञान नहीं है, परंतु जो सत्य तथ्य पूर्ण हो, उपकारक हो उदार एवं उदान्त भावों से युक्त हो, अनेकांत एवं सापेक्ष दृष्टिकोण से युक्त हो उसी को मैं वैज्ञानिक धर्म मानता हूँ। केवल भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, प्राणी विज्ञान, मनोविज्ञान को ही मैं विज्ञान नहीं मानता हूँ। इसके साथ-साथ जो वैज्ञानिक लोग शोध-बोध एवं खोज करते हैं उसे ही मैं विज्ञान नहीं मानता हूँ। यहाँ तक कि वैज्ञानिक लोग जिसे नहीं मानते हैं जिसका शोध-बोध नहीं कर पाये हैं, यहाँ तक कि वे उसका विरोध करते हैं किन्तु सत्य तथ्य से युक्त है उसे ही मैं विज्ञान मानता हूँ। यदि वैज्ञानिक लोगों के मानने पर ही हम उसे सत्य मानते हैं तो यह भी हमारा एक अंधानुकरण है।

प्रश्न-7 (जि.) आपकी धारणा विज्ञान व वैज्ञानिकों के प्रति ऐसी क्यों है?

उत्तर- (क.) क्योंकि मैंने जो विद्यार्थी जीवन से लेकर अभी तक जो कुछ अध्ययन किया, देखा, सुना, परीक्षण-निरीक्षण किया उसके आधार पर मैं इस सुनिश्चित धारणा पर पहुँचा हूँ कि आधुनिक विज्ञान एवं वैज्ञानिक लोग बालक के समान जिज्ञासु एवं सत्य के शोधक-बोधक हैं परंतु वे पूर्ण सत्य को न जान पाये न मान

पाये न प्राप्त कर पाये हैं।

प्रश्न-8 (जि.) गुरुदेव! विज्ञान पूर्ण सत्य तक क्यों नहीं पहुँच पाया है?

उत्तर- (क.) विज्ञान सत्य की खोज के लिए सत्य के रास्ते पर आगे बढ़ रहा है परंतु अभी तक पूर्ण सत्य में नहीं पहुँचा है। कारण यह है कि विज्ञान केवल भौतिक साधन, यंत्रों के माध्यम से भौतिक जगत् का ही परीक्षण-निरीक्षण कर रहा है और इस परीक्षण निरीक्षण से जो सत्य पाता है उसी को मानता है। परंतु केवल भौतिक तत्व ही सत्य नहीं हैं किंतु भौतिक से अभौतिक सत्य अनंतगुणित है। और वह अभौतिक सत्य भौतिक यंत्र एवं साधनों से बोधगम्य नहीं है। इसके साथ-साथ इंद्रियों की शक्ति, भौतिक यंत्रों की क्षमता सीमित होने के कारण इस सीमित शक्ति एवं क्षमता से अनंत सत्य-तथ्य का परिज्ञान नहीं हो सकता है।

प्रश्न-9 (जि.) गुरुदेव! कुछ ऐसे उदाहरण देकर समझायें कि विज्ञान पूर्ण सत्य तक नहीं पहुँच पाया है, और विज्ञान परिवर्तनशील आंशिक सत्य है?

उत्तर- (क.) ऐसे तो हजारों उदाहरण हैं परंतु कुछ प्रसिद्ध उदाहरण यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ। पहले विज्ञान प्रकाश को केवल ऊर्जा (शक्ति) मानता था परंतु आगे जाकर सिद्ध हुआ कि प्रकाश भी फोटोन कणों का समूह है। इलेक्ट्रोन, न्यूट्रोन, प्रोट्रोन के समूहरूप स्कन्ध को पहले अविभाज्य अणु मानते थे लेकिन वह खण्डित होता जा रहा है और क्वार्क तक पहुँच गया है आगे और भी खण्डित होने वाला है।

डार्विन के विकासवाद को पहले सत्य मानते थे अभी वह बहुत अंशों में असत्य सिद्ध हो गया है। पहले एक सूर्य मानते थे अभी अनेक सूर्य मानने लगे हैं। पहले ब्रह्माण्ड सृष्टि की जो कालावधि मानते थे वह कालावधि अभी और बढ़ती जा रही है। अभी तो अनेक वैज्ञानिक ब्रह्माण्ड-सृष्टिवाद को नहीं मानते हैं पहले पृथ्वी को ही भ्रमणशील मानते थे एवं सूर्य को स्थिर मानते थे परन्तु अभी आइन्सटीन के सापेक्ष सिद्धान्तानुसार कथंचित् पृथ्वी भी स्थिर है और सूर्य भी भ्रमणशील है। विज्ञान के अनुसार मौलिक तत्व कभी 105 हो गये हैं तो कभी 85 ही थे। इसमें भी कोई निश्चितता नहीं है। ये वस्तुतः मौलिक तत्व नहीं है परन्तु यौगिक तत्व है। विज्ञान के अनुसार भी उसके मूलतत्व इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रॉन, प्रोटॉन है। जैन धर्म के अनुसार ये सब सूक्ष्म, शुद्ध, अविभाज्य अणु के समूह स्वरूप स्कन्ध हैं। विशेष जानकारी के लिए मेरे “विश्व विज्ञान रहस्य, विश्व द्रव्य विज्ञान, स्वतन्त्रता के सूत्र, प्रवचनसार” आदि ग्रंथों का आप लोगों को अध्ययन करना चाहिए।

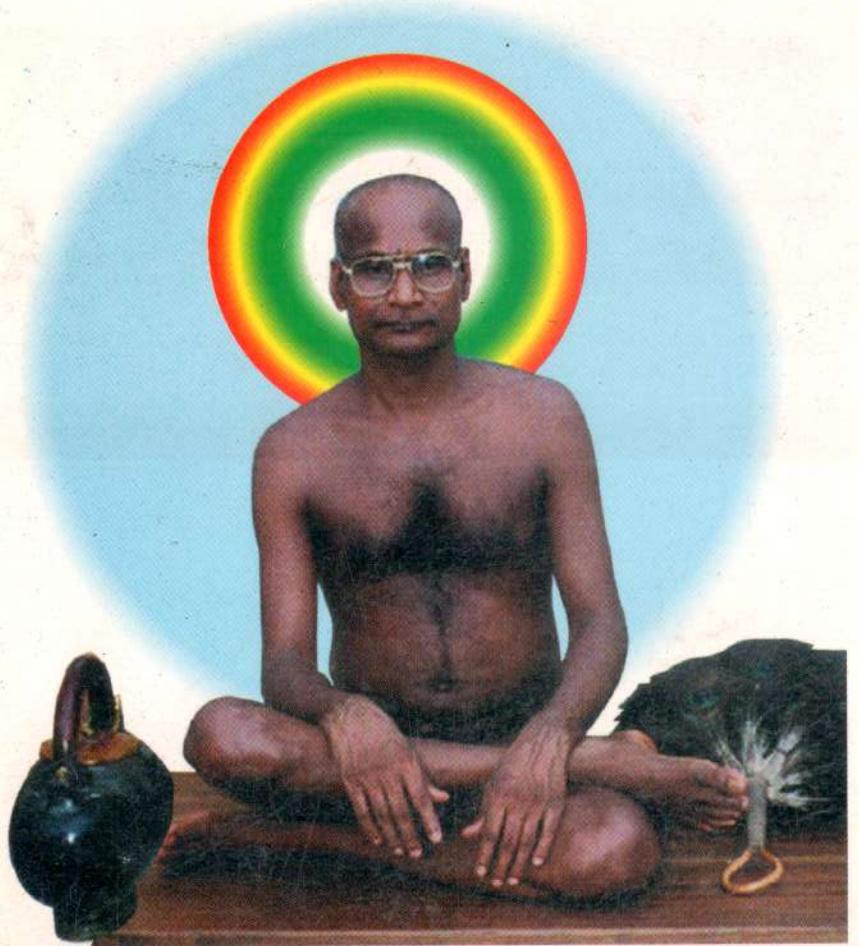
विज्ञानाचार्य श्री कनकनंदीजी प्रवर्तक मुनि श्री सूर्यचंद्रजी के साथ

विचार विमर्श करते हुए (आयडी- उदयपुर)



श्री शान्तिलाल मन्नालाल को आशीर्वाद प्रदान रूप में साहित्य देते हुए आचार्यश्री। इन की तरफ से चतुर्मास में 20% छूट में आचार्य श्री का साहित्य ज्ञान प्राचारार्थ विक्रय किया गया।





आ. रत्न श्री कनकनन्दीजीश्री गुरुदेव